ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

पवमान

(मासिक)

मूल्य: ₹ 20

वर्ष : 31 फाल्गुन-चैत्र वि0स0 2075 मार्च 2019 अंक : 3

मुद्रक: सरस्वती प्रेस, देहरादून वजन: 50 ग्राम

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

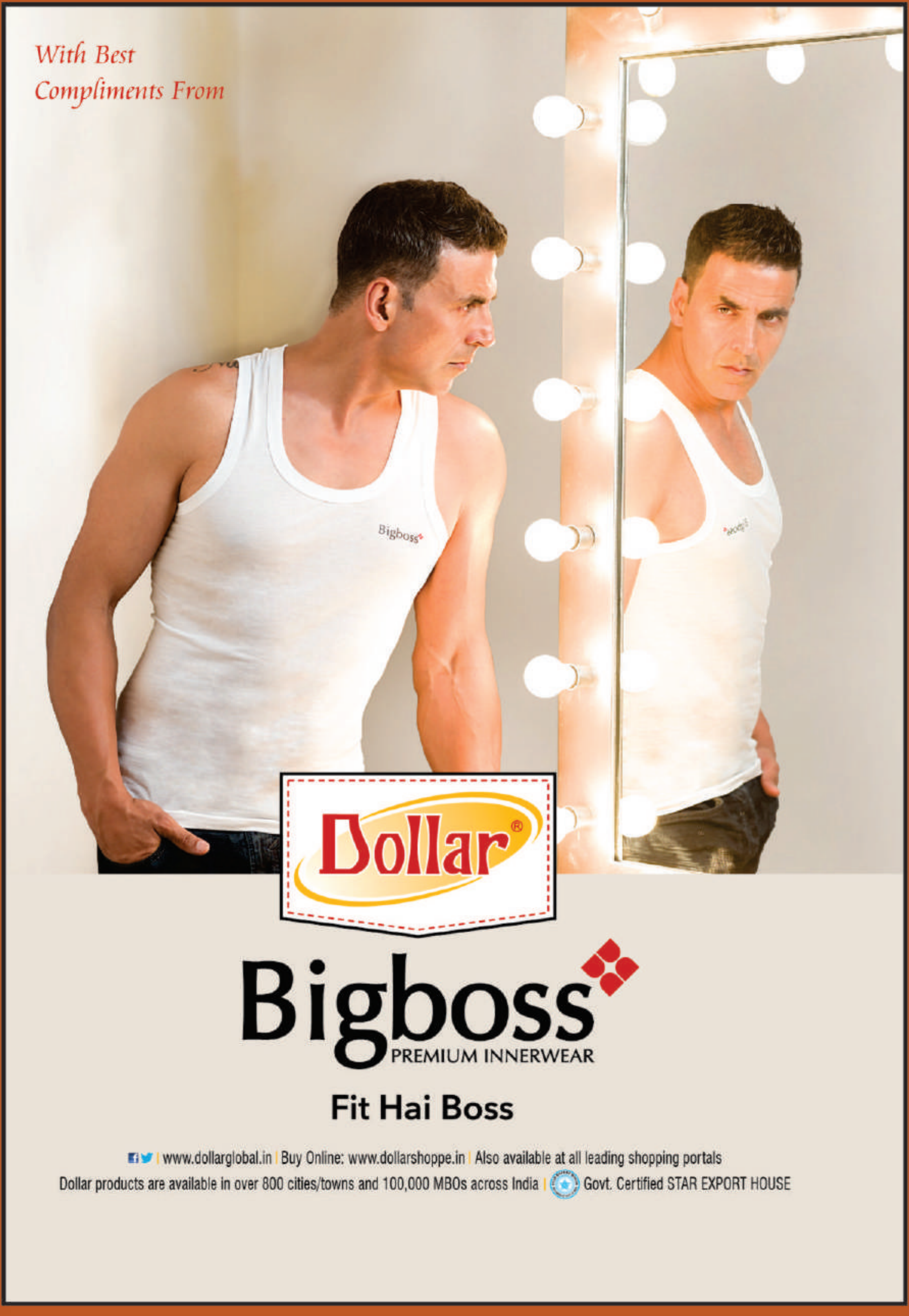
With Best
Compliments From
Bigboss
Dollar®
Bigboss
PREMIUM INNERWEAR
Fit Hai Boss
www.dollarglobal.in | Buy Online: www.dollarshoppe.in | Also available at all leading shopping portals
Dollar products are available in over 800 cities/towns and 100,000 MBOs across India | Govt. Certified STAR EXPORT HOUSE

ओ३म्

पवमान

वर्ष—31 अंक—3

फाल्गुन—चैत्र 2075 विक्रमी मार्च 2019

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,119 दयानन्दाब्द : 194

★

—: संरक्षक :—

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

★

—: अध्यक्ष :—

श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री

मो. : 09810033799

★

—: सचिव :—

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

—: आद्य सम्पादक :—

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

—: मुख्य सम्पादक :—

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

—: सम्पादक मण्डल :—

अवैतनिक

आचार्य आशीष दर्शनाचार्य

मनमोहन कुमार आर्य

★

—: कार्यालय :—

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून—248008

दूरभाष : 0135—2787001

मोबाईल : 7310641586

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार	3
धर्म और नैतिकता	डॉ कृष्णकांत वैदिक	4
होली एक धार्मिक अनुष्ठान का पर्व है	मनमोहन कुमार आर्य	7
शिवरात्रि मूलशंकर के लिये मोक्षदायिनी...	मनमोहन कुमार आर्य	10
सगोत्र विवाह निषिद्ध क्यों है?	पं० जगदेवसिंह सिद्धांती	13
महान वैदिक धर्म प्रचारक रक्त—साक्षी पं. लेखराम आर्य मुसाफिर	डॉ० विवेक आर्य	14
उपवास से स्वास्थ्य—लाभ	वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी	18
बारीन्द्र कुमार घोष	स्वामी यतीश्वरानन्द जी	20
पुलिन बिहारी दास	स्वामी यतीश्वरानन्द जी	22
पूर्व वचन	ईश्वरी प्रसाद प्रेम	24
आर्य समाज	आर्य रवीन्द्र कुमार	27
मदारी का रीछ	महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती	28
चूहेदानी का चूहा	महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती	30
वैदिक साधन आश्रम तपोवन द्वारा आयोजित ग्रीष्मोत्सव		32

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. "वैदिक साधन आश्रम"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. "पवमान"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
सत्संग भवन एवं आरोग्य धाम के निर्माण में सहयोग हेतु			
3. "वैदिक साधन आश्रम"	ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स 17 राजपुर रोड, देहरादून	00022010029560	ORBC0100002
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
4. 'तपोवन विद्या निकेतन"	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000 / — प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000 / — प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000 / — प्रति माह

पवमान पत्रिका के रेट्स

1. मासिक मूल्य (1 पत्रिका) — रु. 20 / — एक प्रति
2. वार्षिक मूल्य (12 प्रतियाँ प्रति वर्ष) — रु. 200 / — वार्षिक
3. 15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य — रु. 2000 / —

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

आध्यात्मिकता और भौतिकता

प्रत्येक व्यक्ति में यह जिज्ञासा रहनी चाहिए कि मैं कौन हूँ? यह प्रकृति कौन है? हम शरीर हैं या आत्मा हैं? गीता में वर्णित अर्जुन बनने के लिए काम का बीज हटाना पड़ेगा और जिज्ञासा का जागरण करना आवश्यक होगा, इसी से हमारे अन्दर अर्जुन की जागृति होती है। जब तक हमारे अन्दर दुःख का भय और सुख का प्रलोभन रहेगा तब तक कामना उठती रहती हैं। सुख की लालसा और दुःख के भय से मुक्त होने पर ही जिज्ञासा का प्रश्न उठ खड़ा होता है कि मैं कौन हूँ? हमारी इच्छा संसार के व्यक्ति या वस्तु द्वारा पूरी नहीं की जा सकती है। जब हम अपनी प्रीति उस परमेश्वर में तनमय कर देते हैं तो यह श्रेयमार्ग कहलाता है, इसमें भगवान् के लिए प्यास के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता है। प्राप्ति को बनाये रखे और अप्राप्ति की इच्छा करता रहे तो वह भोगी कहलायेगा। उसमें सुख का प्रलोभन रहेगा। यही प्रेयमार्ग है। दूसरे शब्दो में हम इन्हें आध्यात्मिकता और भौतिकता कहते हैं। क्या हम जानते हैं कि दुनिया में किस प्रकार से रहना चाहिए? इस पार्थिव जीवन के अतिरिक्त क्या कोई अन्य जीवन है जो लौकिक न होकर पारलौकिक है। इस संसार का जीवन तभी सार्थक हो सकता है जब वह उस पारलौकिक जीवन की एक कड़ी हो, अन्यथा अगर इहलौकिक जीवन सिर्फ इस लोक का है, यहां प्रारम्भ होकर यहीं समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य का जीवन पैदा होना और मिट्टी में मिल जाना– इसके सिवा कुछ नहीं रहता। अगर यह जीवन अपने आप में स्वतन्त्र है, किसी भावी जीवन की तैयारी नहीं है, तो यह व्यर्थ है। हम यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि यथार्थ सत्ता शरीर की है या शरीरी (आत्मा) की है। ज्यों–ज्यों हम ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते जाते हैं त्यों–त्यों यह सिद्ध होता जाता है कि हमारा ज्ञान आत्मा का ज्ञान है। भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन से भिन्न समझ लेने का परिणाम यह होता है कि इन्द्रिय युक्त भौतिक जीवन को हम सब कुछ समझ लेते हैं। इन्द्रियों का जीवन विषय भोग के लिए है, ऐसे में मनुष्य किसी दिशा में न जाकर जीवन के मार्ग में भटक जाता है। जीवन की दिशा निश्चित होने पर मनुष्य बिना किसी सन्देह के अपनी जीवन नौका उस ओर खेने लगता है। यदि उसे दिशा भ्रम हो जाय तो हर समय वह सन्देह में पड़ा रहता है कि जीवन के मार्ग में सत्य क्या है, सही रास्ता क्या है। अगर यही जीवन सब कुछ है और परमार्थ कुछ नहीं, तो यह सोच कर वह भौतिकवादी होने लगता है परन्तु यह भौतिक जीवन अन्तिम अवस्था नहीं है। यह आगे के दिव्य जीवन की एक कड़ी मात्र है, यदि यह दृष्टिकोण अपना लिया जाय तो वह आाध्यात्मिक मार्ग पर चल सकता है। मनुष्य जीवन में भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों का होना अनिवार्य है। भौतिकता साधनों के लिए है और आध्यात्मिकता साध्य है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम शरीर को साधन मानकर आत्मिक जीवन के विकास हेतु प्रयास करें।

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वेदामृत

सरस्वती–वन्दना

पावकाः नः सरस्वती, वाजेभिर् वाजिनीवती।।
यज्ञं वष्टु धियावसुः।।

ऋग्वेद 1.3.10

ऋषिः मधुच्छन्दा वैष्वामित्रः। देवता सरस्वती। छन्दः गायत्री।

(पावका) पवित्रतादायिनी, **(वाजिनीवती)** क्रियामयी, **(धिया–वसुः)** बुद्धि और कर्म द्वारा निवास–प्रदायिनी **(सरस्वती)** सरस्वती–जगन्माता और वेदवाणी **(वाजेभिः)** अन्नों, धनों, बलों, वेगों, विज्ञानों आदि के द्वारा **(नः)** हमारे **(यज्ञं)** [जीवन–रूप] यज्ञ को **(वष्टु)** [पूर्ण करने की] कामना करे।

आओ, हम सरस्वती की वन्दना करें। सरस्वती जगन्माता जगदीश्वरी का नाम है, क्योंकि वह रसमयी है, सबको अपना मधुर रसमय स्तन्य पान करानेवाली है। उसका दुग्ध–रस ज्ञान, बल, पुष्टि, विवेक, चैतन्य, प्राण, स्फूर्ति, आनन्द सब–कुछ देनेवाला है। उसका पयःपान कर निपट अज्ञानीजन ज्ञान–राशि के वारिधि बन जाते हैं। उसका पयःपान कर पतित जन महर्षि बन जाते हैं। उसका पयःपान कर निर्बल आत्मावाले जन आत्मिक बल के भण्डार बन जाते हैं। उसका पयःपान कर सांसारिक दुःखों से उत्पीड़ितजन सुख–सागर की तरंगों में झूलने लगते हैं। उसका पयःपान कर आतुरजन तन–मन से स्वस्थ और सुखी बन जाते हैं। उसका पयःपान कर निष्क्रियजन सक्रिय बन जाते हैं। उसका पयःपान कर असुरजन देव बन जाते हैं। वह 'पाविका' है, अपवित्रों को पवित्र करनेवाली है, कालुष्य से मलिन अन्तःकरणवालों के मालिन्य का अपहरण करनेवाली है। वह 'वाजिनीवती' है, क्रियामयी है। वह 'धियावसु' है, बुद्धि–प्रदान और कर्मोपदेश द्वारा निवास–प्रदायिनी है। ऐसी वह जगदीश्वरी मां हमारे जीवन में पदार्पण करे और अपने पास विद्यमान अन्न, धन, बल, वेग, विज्ञान आदि की निधि के द्वारा हमारे जीवनयज्ञ को पूर्णता प्रदान करें।

सरस्वती वेदवाणी को भी कहते हैं, क्योंकि वह जीवन को संतृप्त करनेवाले ज्ञान के रस से भरपूर है। उसमें भौतिक विद्या, अध्यात्म–विद्या, शरीर–विद्या, आरोग्य–विद्या, मनोविज्ञान, दर्शन आदि सब विद्याओं का सरस स्रोत उमड़ रहा है। वह 'पावका' है, श्रोता के मानस को पवित्र करनेवाली है। वह 'वाजिनीवती' है, सशक्त क्रियावाली है। अर्थचिन्तनपूर्वक किया गया उसका मन्त्र–पाठ वेदपाठी को उद्बोधन देकर उसके मन में एक तीव्र क्रिया उत्पन्न कर देता है। वह 'धियावसु' है, नवनवोन्मेशशालिनी प्रज्ञा के प्रदान और कर्तव्य–प्रेरणा के द्वारा अपने अध्येता को निवास प्रदान करनेवाली है।

हे वरदे सरस्वती! हमें वरदान दो। हे विद्या–वीणा के तारों को झंकृत करनेवाली मां! हमें विद्या की झंकार सुनाओ। हे दिव्ये! हमें अपने दिव्य नाद से अनुप्राणित करो। हे मातः! हमारी वन्दना को स्वीकार करो। **(डॉ० रामनाथ वेदालंकार कृत वेद–मंजरी से साभार)**

धर्म और नैतिकता

—डॉ कृष्णकांत वैदिक

'धर्म' शब्द धृञ् धारणे धातु से 'मन' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है–धारण, पोषण और रक्षा करना। इसलिए जो धारण किया जाता है, वह धर्म है। वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद कहते हैं– 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिन कर्मों का अनुष्ठान करने से मनुष्य जीवन का अभ्युदय हो और अन्त में निःश्रेयस की प्राप्ति हो वह धर्म है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (01 / 22 / 18) में कहा गया है–

'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्'।। अर्थात् कभी विनाश को न प्राप्त होने वाला, जगत् का रक्षक परमेश्वर समस्त धर्मों को धारण करता हुआ तीनों प्रकार के जानने योग्य और प्राप्त होने योग्य पदार्थों को इस मूल कारण से ही विविध रूपों में बनाता है। मनुस्मृति में कहा गया है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

अर्थात् इसी ब्रह्मवर्त्त देश में उत्पन्न हुए विद्वानों के सानिध्य से पृथ्वी पर रहने वाले सब मनुष्य अपने–अपने आचरण अर्थात् कर्त्तव्यों की शिक्षा ग्रहण करें। मनुस्मृति में धर्म के धृति, क्षमा आदि दस लक्षण बताए गए हैं। यदि मनुष्य इन पर आचरण करते हुए जीवन बिताये तो सारे विश्व में शान्तिमय वातावरण पैदा कर समस्त मानव जाति को सुखी बनाया जा सकता है। चाणक्य के अनुसार सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ है, अर्थ का मूल राज्य है, राज्य का मूल इन्द्रिय–जय है। इन्द्रिय–जय या संयम के बिना कोई राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कहा है– 'कहने सुनने–सुनाने, पढ़ने–पढ़ाने का फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना। इसलिए धर्माचार में सदा युक्त रहे।' इसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है– 'जो सत्य–भाषणादि कर्मों का आचरण करना है, वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है।' इस प्रकार धर्माचरण से ही धर्म की प्राप्ति, सिद्धि एवं अभिवृद्धि देखकर मुनियों ने सब तपस्याओं का श्रेष्ठ मूल आधार धर्माचरण को ही स्वीकार किया है। वेदों के उपदेशों का सार ही उपनिषदों और आरण्यकों में दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् को तो एक प्रकार से नैतिक शिक्षा का भण्डार ही कह सकते हैं। इसके एकादश अनुवाक में वेद–विद्या पढ़ा चुकने के बाद आचार्य अन्तेवासी शिष्य को दीक्षान्त–भाषण में उपदेश देता है – सत्य बोलना। धर्माचरण करना। स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। आचार्य को जो प्रिय हो वह दक्षिणा मे उसे देकर ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर गृहास्थाश्रम में प्रवेश करना और प्रजा के सूत्र को मत तोड़ना। सत्य बोलने से प्रमाद न करना, जिस बात से तुम्हारा भला हो उससे प्रमाद मत करना। अपनी विभूति बढ़ाने में प्रमाद मत करना। स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद मत करना। माता, पिता, आचार्य और अतिथि को देव मानने का उपदेश किया गया है। विद्वानों के उपदेशों को ध्यान से सुनने और किसी विवाद में न पड़ने को कहा गया है।

नीति का अर्थ है मनुष्य के जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन–रूप नियम, जिन पर चल कर इस जीवन और परलोक (पुनर्जन्म) में कल्याण की प्राप्ति हो। आचार शिक्षा का सम्बन्ध

व्यक्तिगत जीवन से है, जिसमें आत्मोन्नति पर बल दिया गया है। नैतिक शिक्षा में व्यक्ति के आचार–विचार की शुद्धि के साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक और प्राणि मात्र से सम्बन्धित विषयों पर विचार किया जाता है। मनुष्य अपने–पराये, सजातीय–विजातीय, शत्रु–मित्र, परिचित– अपरिचित, आदि से किस प्रकार का व्यवहार करे यह नैतिक शिक्षा बताती है। इसके द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक कल्याण होता है। नैतिक शिक्षा का मूल वेदों में मिलता है। **'सर्वं वेदात् प्रसिध्यति'**– इस भारतीय सिद्धान्त से ज्ञात होता है कि अपौरुषेय वेदों से ही समस्त विद्याएं प्रादुर्भूत हुई हैं। वेदों में विधि और निषेध अर्थात् मनुष्यों के कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म वर्णित हैं। वेदों के साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, गीता, महाभारत, रामायण, पंचतन्त्र, विदुर, शुक्र, भर्तृहरि, आदि ऋषियों के नीति ग्रन्थों में इनका विस्तृत वर्णन है।

जिससे अभ्युदय धारण हो वह धर्म है और इस अभ्युदय को प्राप्त करने के लिए जो उपाय हैं वे नीति कहलाते हैं, इस प्रकार देखा जाये तो दोनों का एक ही अर्थ होता है। कुछ लोग लौकिक अभ्युदय को प्राप्त करने के साधन को 'नीति' और पारलौकिक साधन को धर्म कहते हैं। नीति या नैतिकता से ही शास्त्र और धर्म प्रतिष्ठित होते हैं। नैतिकता के अभाव में शास्त्र और धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्मविहीन नैतिकता का कोई औचित्य नहीं है, भले ही यह आरम्भ में कुछ चमत्कारिक सफलता दिला दे परन्तु अन्ततोगत्वा वह पतन की ओर ही ले जायेगी। मनुस्मृति में कहा गया है– 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् हमारे जीवन में जो स्वाभाविक धर्म और संयम रहता है, वह हमारी रक्षा करता है और जो हम धर्मपूर्वक आचरण या सदाचार करते हैं, वह धर्म हमारी रक्षा करता है। नीति या नैतिकता का मूल ही सदाचार है। धर्म की दृष्टि से नैतिकता के चार पाद हैं–सत्य, तप, दया और पवित्रता। इनमें सत्य को सर्वोपरि माना गया है।

सामवेद में कहा गया है–'स्तुहि सत्यधर्माणाम्' अर्थात् सत्यनिष्ठ की प्रशंसा करे। मुण्डकोपनिष्द् में कहा गया है–

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था वितो देवयानः।

येनाक्रमन्त्यृशयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।।

अर्थात् सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य धाम में गमन करते हैं जहां सत्य का वह परम आश्रय परमात्मा अनावृत रूप से स्थित है। तप का अर्थ है– पीड़ा सहना, घोर कड़ी साधना करना, मन का संयम रखना आदि। महर्षि दयानन्द के अनुसार ''जिस प्रकार सोने को अग्नि में डालकर इसका मल दूर किया जाता है उसी प्रकार सद्गुणों और उत्तम आचरणों से अपने हृदय, मन और आत्मा के मैल को दूर किया जाना तप है। गीता में तप तीन प्रकार के बताए गए हैं– शारीरिक, जो शरीर से किया जाये। वाचिक, जो वाणी से किया जाये और मानसिक, जो मन से किया जाये। देवताओं, गुरुओं और विद्वानों की पूजा अर्थात यथा योग्य सेवा और सुश्रूषा करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः शरीर के बीजभूत भाग तत्त्व की रक्षा करना और ब्रह्म में विचरना या अपने को सदा परमात्मा की गोद में महसूस करना। किसी को मन, वाणी और शरीर से हानि न पहुंचाना अहिंसा है। हिंसा और अहिंसा केवल शारीरिक ही नहीं अपितु वाचिक और मानसिक भी होती हैं। वाणी के तप से अभिप्राय हैः ऐसी वाणी बोलना जिससे किसी को

हानि न पहुंचे। सत्य, प्रिय और हितकारक वाणी का प्रयोग करना चाहिए। वाणी के तप के साथ ही स्वाध्याय की बात भी कही गई है। वेद, उपनिषद आदि सद्ग्रन्थों का नित्य पाठ करना और अपने द्वारा किये जा रहे नित्य कर्मों पर भी विचार करना स्वाध्याय है। मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम और चित्त की शुद्ध भावना यह सब मन का तप है। मनु कहते हैं कि तप से मन का मैल दूर होता है और पाप का नाश होता है। शास्त्र कहते हैं कि अपने को ऊपर उठाना है तो तपस्वी बनो। अथर्ववेद में कहा गया है– 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति' अर्थात् ब्रह्मचर्य एवं तप से राजा विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करता है। दया की महिमा भी नैतिक कृत्यों के रूप में शास्त्रों में सर्वत्र मिलती है। तुलसीदास कहते हैं–

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िये जब लौं घट में प्राण।।

मनुष्यों को न केवल शरीर अपितु मन, बुद्धि और आत्मा को भी पवित्र रखना चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है–

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।

अर्थात् जल से शरीर के बाहरी अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप से जीवात्मा और ज्ञान या विवेक से बुद्धि निश्चित रूप से पवित्र होती है। मानव–जीवन में जो कुछ श्रेष्ठ और नैतिकतापूर्ण है, उसके पीछे विवेक विद्यमान होता है। नीति बोध से जब धर्म का उदय होता है तो मनुष्य अपनी अपूर्णता के प्रति जागरूक हो जाता है। व्यक्तित्व का आध्यात्मिक विकास दिव्य जीवन का शिलान्यास है जो नीतिबोध पर निर्भर रहता है। नीतिबोध की सार्थकता भी दिव्य जीवन की ओर अग्रसर होने में ही है।

सम्पूर्ण विश्व में भारत जैसे धर्माधारित नैतिक मूल्यों का विशाल भण्डार नहीं है और न ही आज की ज्वलन्त समस्याओं को दूर करने हेतु कोई दूसरा मार्ग है। केवल वैदिक सनातन नैतिक पद्धतियों से ही विश्व का कल्याण सम्भव है। यदि अपने नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखना है तो हमें उपरोक्त शास्त्रों से प्रेरणा लेनी होगी। सबसे पहले स्वयं को सुधारते हुए सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा, निरव्यसन, जितेन्द्रियता, अक्रोध, अलोभ, परोपकारिता आदि सद्गुणों को अपनाना होगा। नैतिकता के प्रारम्भिक संस्कार माता की गोद से ही बनते हैं। माता की शिक्षा, उसके आदर्श संस्कार और घर का वातावरण बच्चों के कोमल मन का विकास करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माता–पिता और आचार्य बालक/बालिकाओं के आदि गुरु होते हैं। वे इन आदर्शों को संस्कार रूप में बच्चें में स्थापित करें क्योंकि मनुष्य जीवन की विकासधारा उसके शैशव–कालीन अनुभवों से निर्धारित मार्ग का ही अनुसरण करती है। धर्म, संस्कृति और इतिहास से बच्चों को उपदेशात्मक कथाएं सिखलायी जानी चाहिएं जिसे उनमें ईश्वर भक्ति और समर्पण की भावना आएं। इस प्रकार की शिक्षा से युवा पीढ़ी में मनसा–वाचा–कर्मणा सत्प्रवृत्तियों का विकास हो सकेगा। यह उनके चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा और उनमें सत्य, दया, त्याग तप, विनय, न्याय प्रियता और राष्ट्र प्रेम आदि के गुण विकसित होंगे। प्राचीन परम्परागत नैतिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करके ही हम विश्व में एक आदर्श और समृद्ध समाज का निर्माण कर सकते हैं।

होली एक धार्मिक अनुष्ठान एवं आमोद-प्रमोद का पर्व है

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

आर्यावर्त उत्सवों व पर्वों का देश है। पर्व का अपना महत्व होता है। होली भी दीपावली, दशहरा, श्रावणी आदि की ही तरह एक सामाजिक एवं धार्मिक पर्व है। यह पर्व फाल्गुन मास की पूर्णिमा को हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इसे मनाने की प्रासंगिकता व महत्व अन्य पर्वों से कुछ अधिक प्रतीत होता है। इस पर्व को चैत्र माह के आरम्भ से एक दिन पूर्व फाल्गुन पूर्णिमा को एक वृहद यज्ञ करके मनाते हैं और अगले दिन सभी लोग एक दूसरे को पर्व की बधाईयां देने के साथ मिष्ठान्न गुजिया व अन्य पदार्थों से स्वागत व आदर देते हैं तथा गुलाल व रंग लगाते हैं। होली का महत्व किन कारणों से है? इसका मुख्य कारण तो यह है कि होली पर्व के समय शीत बहुत कम हो जाती है जिससे लोग कई महीनों से त्रस्त थे। दिन भी छोटे होते थे। सायं 5 से 5.30 बजे ही अन्धकार हो जाता था। होली से लगभग डेढ़ महीने पहले दिनों का बढ़ना आरम्भ हो जाता है। शीत ऋतु में पहने जाने वाले वस्त्रों को सुखा व सम्भाल कर अगले वर्ष के लिये सुरक्षित रख देते हैं। होली से कुछ दिन पहले हल्की गर्मी आरम्भ होने के कारण इस ऋतु के अनुकूल वस्त्रों को तैयार करते हैं। यदि पर्यावरण एवं वनस्पति जगत की दृष्टि से देखा जाये तो इस अवसर पर आषाढ़ी फसल तैयार होने को होती है। गेहूं की बालियों व फलियों में नव-अन्न बन जाता है जिसका पकना शेष रहता है।

किसान ने इसे उगाने में बहुत परिश्रम किया होता है। उसे आरम्भ में कहीं न कहीं डर होता है कि किसी कारण से उसका परिश्रम व्यर्थ न हो जाये। होली के बाद जौं व गेहूं आदि की फसल का कटना आरम्भ होने को होता है। अतः किसान अपनी मेहनत व उससे उत्पन्न फसल को देखकर प्रसन्न होता है जिसे वह ईश्वर का धन्यवाद करते हुए उत्सव के रूप में मनाकर अपने परिवार व इष्ट मित्रों को भी प्रसन्नता प्रदान करने का प्रयास करता है। प्राचीन समय से इस अवसर पर गेहूं के नये दानों को भूनकर उनसे वृहद-यज्ञों में आहुतियां देकर यज्ञ किया जाता है जिससे ईश्वर का धन्यवाद होता है और इसके बाद अन्न का उपभोग करने में सुख व सन्तोष का अनुभव होता है। होली के अवसर पर हमारे सब वन-उपवन भी नये पत्तों व पुष्पों से आंखों को अत्यन्त प्रिय लगते हैं और उपवनों में सुगन्ध आदि का वातावरण मन को सुख व आनन्द देता है। अतः यह समय हर दृष्टि से उत्सव के अनुकूल होता है। इस अवसर पर वातावरण में न अधिक शीत होता है न उष्णता। वनस्पति जगत अपने यौवन पर होता है एवं मनभावन होता है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि रंग-बिरंगे पुष्पों की तरह परमात्मा ने मनुष्यों को गोरा, काला, सावंला, गेहूंवा आदि अनेक रंगों व आकृति वाला बनाया है। किसी को परमात्मा ने लम्बा तो किसी को नाटा, किसी को मोटा तो किसी को पतला तथा किसी को गांठा तो किसी को पतला बनाया है। शरीर का बाह्य रूप गोरा व काला आदि है तो अन्दर धमनियों में लोहित या लाल रंग का रक्त बहता है। पुष्पों के रंग भी हमें ईश्वर की महिमा का परिचय देते हैं जो मिट्टी से नाना रंगों व मनमोहन आकृतियों

के पुष्पों को उगाता, बनाता व संवारता है। पुष्पों में उसकी सर्वोत्तम निर्माण कला के दर्शन होते हैं। ऋषि कहते हैं कि रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है। फूलों को देखकर भी ईश्वर का साक्षात किया जा सकता है। ईश्वर गुणी है और फूल उसका गुण वा रचना, अस्तु।

होली पर्व के अवसर पर फलों के रंगों के अनुरूप हम स्वयं भी एक दूसरे के चेहरों पर रंग लगा कर उन्हें पुष्पों के समान आकर्षक व मनमोहक रूप देना चाहते हैं। खिले पुष्प की हम खुशियों व सुख से उपमा देते हैं और कामना करते हैं कि हमारे सभी इष्ट–मित्र सदैव पुष्पों की तरह हंसते मुस्कराते व खिले– खिले से रहे। यही काम हम अपने मित्रों व कुटुम्बियों के चेहरे पर रंग लगाकर उन्हें शुभकामनायें देते हुए मिष्ठान्न आदि खिला कर करने का प्रयास करते हैं। ऐसी भी किम्वदन्ति है कि इस दिन सभी लोग अपने मतभेद व मनमुटाव भुलाकर परस्पर सद्भाव व प्रेम का परिचय देते हैं। यदि इस दिन लोग इस दिशा में कुछ पग भी आगे बढ़ाते हैं तो यह किसी उपलब्धि से कम नहीं है। इसका कारण ऐसा करने से मन को सुख व शान्ति का मिलना है।

वैदिक धर्म व संस्कृति में ईश्वर की आज्ञा का पालन व परोपकार के पर्याय यज्ञों वा अग्निहोत्र का विशेष महत्व है। वैदिक संस्कृति में महाभारत युद्ध के कारण कुछ परिवर्तन व विकार भी आया है। हम इन पर्वों के प्राचीन स्वरूप व मनाने की विधि को प्रायः भूल चुके हैं। अब इस पर्व को मनाने के विकृत रूप से ही अनुमान किया जा सकता है कि होली पर्व का प्राचीन स्वरूप क्या रहा होगा? होली पर पूर्णिमा के दिन बड़ी मात्रा में लकड़ियों व उपलों को एकत्र कर रात्रि के समय उसे मन्त्रोच्चार कर जलाया जाता है और उसमें मन्त्र बोलकर से हवन सामग्री व नवान्न के होलों की आहुतियां दी जाती हैं। इससे अनुमान लगता है कि यह प्रक्रिया व अनुष्ठान वृहद यज्ञों का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। ऋषि दयानन्द ने 155 वर्ष पूर्व वेद व उनके सत्य अर्थों से देशवासियों का परिचय कराया था। अग्निहोत्र यज्ञ पर्यावरण व वातावरण को शुद्ध व पवित्र करने, दुर्गन्ध का नाश करने, रोग व हानिकारक किटाणुओं को निष्प्रभावी व नष्ट करने, ईश्वर की वेदाज्ञा का पालन करने और अपने हितकर व इष्ट पदार्थों का भोग करने से पहले उसे ईश्वर के प्रतीक अग्नि व सभी देवताओं के मुख अग्नि को आहुति रूप में समर्पित करने के लिये किया जाता है। ऐसा करके हम इस बहद यज्ञ में अपने जिन साधन व सामग्री का व्यय करते हैं उससे कहीं अधिक लाभ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हमें मिलता है। हमारे जीवन निर्वाह के कारण प्रकृति में वायु, जल, भूमि आदि का जो प्रदूषण होता है तथा चूल्हे व चक्की से जो जीव–जन्तु आदि मर जाते व पीड़ित होते हैं उस हानि की आंशिक निवृत्ति व पूर्ति होती है। होली पर अपने से ज्ञान, धन व बल में न्यून अपने सामाजिक बन्धुओं को अपने गले से लगाकर हम यह जताते हैं कि हम सब एक ईश्वर के पुत्र हैं और सब परस्पर सहयोगी है। सबको एक दूसरे के हितों का ध्यान रखते हुए परस्पर सहयोग करना है जिससे किसी को किसी प्रकार का दुःख व पीड़ा न हो। ऐसी अभिव्यक्तियां ही इस पर्व को मनाते हुए लोग प्रतीक रूप में करते हुए दिखते हैं।

आर्य पर्व पद्धति में होली के विषय में 'शब्दकल्पद्रुम कोश' तथा 'भाव–प्रकाश' ग्रन्थों के आधार पर कहा गया है कि तिनकों की अग्नि में भूने हुए अध–पके शमीधान्य (फली वाले अन्न) को 'होलक' (होला) कहते हैं। होला स्वल्प–वात है और मेद (चर्बी), कफ और श्रम (थकान) के दोषों को शमन करता है। जिस–जिस अन्न का होला होता है, उस में उसी अन्न का गुण होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आदिकाल में तृणाग्नि

में भुने आषाढ़ी के प्रत्येक अन्न के लिए 'होलक' शब्द प्रयुक्त होता था किन्तु पीछे से वह शमीधान्यों (फलीयुक्त) के होलों के लिए ही रूढ़ हो गया था। हिन्दी का प्रचलित ''होला'' शब्द इसी का अपभ्रंश है। आषाढ़ी नव–अन्न–इष्टि में नवागत अध–पके यवों के होम के कारण उस को ''होलकोत्सव'' कहते थे। उस में होलक या होले हुतशेष रूप से भक्षण किए जाते थे और उन के सत्तू (सक्तु) का प्रयोग भी इसी पर्व के दिवस से प्रारम्भ होता था। सत्तू एक विशेष आहार है और यह पित्तादि दोषों को शमन करता है। भारतीयों के विशेष–विशेष पर्व विशेष–विशेष आहारों के प्रयोगों के आरम्भ के लिए निर्दिष्ट हैं। उसी प्रकार यह होलकोत्सव होलों और उसके बने हुए सत्तुओं के उपयोग के लिए उपयुक्त है।

वैदिक धर्मावलम्बियों में प्राचीन काल से यह प्रथा चली आती है कि नवीन वस्तुओं को देवों को समर्पण किए बिना अपने उपभोग में नहीं लाया जाता है। जिस प्रकार मानव देवों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार भौतिक देवों में अग्नि सर्व–प्रधान है। वह विद्युत रूप से ब्रह्माण्ड में व्यापक है और भूतल पर साधारण अनल, जल में बड़वानल, तेज में प्रभानल, वायु में प्राणापानानल और सर्व प्राणियों में वैश्वानर के रूप में वास करता है।

देवयज्ञ का प्रधान साधन भौतिक अग्नि ही है क्योंकि वह सब देवों का दूत है। वेद में उस को अनेक बार 'देवदूत' कहा गया है। वही अग्नि देवता सब देवों को होमें हुए द्रव्य पहुंचाता है। इसलिए नवागत अन्न सर्वप्रथम अग्नि के ही अर्पण किए जाते हैं और तदन्तर मानव देह द्वारा ब्राह्मणों को भेंट करके अपने उपयोग में लाए जाते हैं। श्रुति कहती है– 'केवलाधो भवित केवलादी।' इसका अर्थ है कि अकेला खाने वाला केवल पाप खाने वाला है। मनु महाराज इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'जो पुरुष केवल अपने लिए भोजन पकाता है वह पाप भक्षण करता है। यज्ञशेष वा हुतशेष ही सज्जनों का (भोक्तव्य) अन्न विधान किया गया है।' इसलिए अब तक भी जन साधारण में यह प्रथा प्रचलित है कि जब तक नवीन अन्नों वा फलों को पूजा के प्रयोग में न लाया जाये तब तक उन को लोक भाषा में ''अछूत वा छूते'' कहते हैं। तदनुसार ही आषाढ़ी की नवीन फसल आने पर नये यवों को होमने के लिए इस अवसर पर प्राचीन काल में नवसस्येष्टि, होलकेष्टि वा होलकोत्सव होता था।

जहां प्रत्येक गृह में पृथक्–पृथक् नवसस्येष्टि की जाती थी, वहां प्रत्येक ग्राम में सामूहिक रूप से सम्मिलित नवसस्येष्टि भी होती थी और उस में सब लोग अपने–अपने घरों से यवादि आह्वनीय पदार्थ लाकर चढ़ाते थे। वर्तमान समय में काष्ठ और कण्डों (उपलों) के ढेरों के रूप में होली जलाने की प्रथा प्राचीन सामूहिक नवसस्येष्टियों का विकृत रूप है। उस में आह्वनीय सामग्री का हवन तो कुटिल काल की गति में लुप्त हो गया है और केवल काष्ठ तथा अमेध्य द्रव्यों का जलाना और यवों की बालों का भूनना रूढ़ि वा लकीर के रूप में रह गया है। इस आषाढ़ी नवान्नेष्टि का उपर्युक्त देवयज्ञ द्वारा देवपूजन विद्वत्–समादर, वायु–संशोधन, गृह–परिमार्जन तथा नवीन वस्त्र परिवर्तन धार्मिक और वैज्ञानिक स्वरूप है। इस अवसर पर गान–वाद्य द्वारा आमोद और हर्षोल्लास तथा इष्ट–मित्रों का सप्रेम सम्मेलन उस के आनुशांगिक उपयोगी लौकिक अंग हैं। जो समय हमारे लिए वर्ष भर तक अन्न प्रदान करते रहने की व्यवस्था करता उस को मंगलमूल वा सौभाग्यसूचक समझ कर उस पर परमेश्वर के गुणानुवादपूर्वक आन्दोत्सव मनाना स्वाभाविक ही है। परस्पर प्रेम परिवर्धन का भी यह बड़ा उपयुक्त अवसर है। ओ३म् शम्।

शिवरात्रि मूलशंकर के लिये मोक्षदायिनी बोधरात्रि बनी

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

सनातन धर्म सृष्टि के आरम्भ से प्रवृत्त धर्म है। इसका आधार वेद और वैदिक शिक्षायें हैं जो ईश्वर प्रदत्त होने से पूर्णतः सत्य पर आधारित हैं। वेद संसार में सबसे पुराने ग्रन्थ हैं इस कारण इन्हें पुराण भी कहा जाता है। वास्तविक पुराण वेद ही हैं। वेद में किंचित मानवीय इतिहास नहीं है। चार वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तकें हैं। महाभारत युद्ध तक आर्यावर्त्त वा भारत सहित पूरे विश्व में वेदों का ही प्रचार था और सर्वत्र एक वैदिक धर्म ही प्रतिष्ठित था। महाभारत के बाद देश में अज्ञान व अन्धकार छा गया। देश में छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गये। देश की शक्ति विभाजित होने से कमजोर हुई। देश में वेद व उसका ज्ञान विलुप्त हो गया। वेदों के गलत अर्थ किये व समझे जाने लगे। वेदों में ईश्वर के अनेक गुणों का वर्णन आता है। कल्याणकारी व मंगलकारी होने के कारण ईश्वर को 'शिव' कहा जाता है। सर्वव्यापक होने से ईश्वर का नाम 'विष्णु' है। शिव और विष्णु नाम के सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान ईश्वर से पृथक सत्तावान कोई अन्य ईश्वर व देवता नहीं है। यह दोनों गुणवाचक नाम एक ही ईश्वर के हैं। अज्ञानता के काल में ईश्वर के गुणवाचक इन नामों शिव व विष्णु को पृथक ईश्वर वा देवता मान लिया गया। कुछ व्यक्तियों ने इन नामों से शिव पुराण और विष्णु पुराण नामक वृहद ग्रन्थों की रचनायें भी कर लीं। इनको प्रतिष्ठा दिलाने के लिये इनके लेखकों ने ग्रन्थकार के रूप में अपना नाम न देकर ऋषि वेद व्यास जी का नाम रख दिया। वेदव्यास जी पांच हजार वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध के समकालीन थे और शिव व विष्णु पुराणादि 18 पुराण बौद्ध व जैन काल के बाद लिखे गये। इन ग्रन्थों में अप्रामाणिक व अविश्वसनीय इतिहास व कथन हैं जो इन ग्रन्थों को विवेक दृष्टि से पढ़ने पर ज्ञात होते हैं। शिव पुराण की रचना के बाद ही इसके अनुयायी शैवों ने शिवरात्रि व्रत व पर्व का आरम्भ किया था।

शिवपुराण ग्रन्थ के अनुसार शिव के लिंगों की स्थापना कर मन्दिरों का निर्माण स्थान–स्थान पर हुआ। इन मन्दिरों की स्थापना से जो दान व चढ़ावा आता था उससे पुजारियों को लाभ होता था। इस कारण वह मूर्तिपूजा के समर्थक व प्रचारक बन गये और अतिश्योक्तिपूर्वक मूर्तिपूजा के लाभ बताने लगे। देश के अधिकांश लोग शैव मतावलम्बी बन गये और फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन को शिवरात्रि पर्व घोषित किया गया। इस शिवरात्रि के दिन व्रत व उपवास सहित मन्दिरों में उपवासपूर्वक रात्रि को जागरण करने लगे। जागरण में भजन कीर्तन व शिवपुराण का पाठ आदि होने लगा। गुजरात में 12 फरवरी, 1825 को मौरवी नगर के टंकारा ग्राम में एक उच्च कुलीन औदीच्य ब्राह्मण कर्शनजी तिवारी के यहां मूलशंकर जी का जन्म हुआ। आयु के 14वें वर्ष में इस बालक ने अपने शिवभक्त पिता की प्रेरणा से भगवान शिव की प्रसन्नता के लिये व्रतोपवास किया। शिवरात्रि की रात को मन्दिर में जागरण करते हुए शिव की पिण्डी पर चूहों को उछलकूद करते देखकर इस बालक

मूलशंकर के मन में ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने व शिव लिंग के पार्थिव व शक्तिहीन होने के विरोधाभास ने मूर्तिपूजा के प्रति अनास्था उत्पन्न कर दी। सच्चे शिव की तलाश और मृत्यु पर विजय के लिये वह पितृगृह से आयु के 22वें वर्ष में निकल पड़े। वर्तमान में इन्हीं मूलशंकर को सारा संसार वेदों के मर्मज्ञ विद्वान ऋषि दयानन्द के नाम से जानता है। फाल्गुन कृष्ण दशमी के दिन मूलशंकर का जन्म हुआ था। सन् 1839 की शिवरात्रि को इन्हें बोध प्राप्त हुआ अतः आर्यसमाज शिवरात्रि को ऋषि दयानन्द बोधोत्सव के रूप में मनाता है।

ऋषि दयानन्द ने गृहत्याग के बाद पौराणिक तीर्थ स्थानों का देशाटन कर यहां निवास करने वाले विद्वानों से धर्म, योग व इतिहास आदि विषयों की जानकारी प्राप्त की। घर से निकलने के समय वह संस्कृत और यजुर्वेद का अध्ययन वा उसे कण्ठ कर चुके थे। उन्होंने सन् 1860 से 1863 के ढाई वर्षों में मथुरा में दण्डी गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से संस्कृत की आर्ष व्याकरण अष्टाध्यायी–महाभाष्य–निरुक्त प्रणाली का अध्ययन किया। प्रायः धर्म संबंधी सभी विषयों पर स्वामी दयानन्द जी ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द जी से शंका समाधान भी किया था। यह बता दें की गुरु विरजानन्द के समान आर्ष संस्कृत व्याकरण का ज्ञानी गुरु पूरे देश व विश्व में कहीं नहीं था। स्वामी दयानन्द जैसा योग्य व जिज्ञासु शिष्य भी कहीं कोई और नहीं था। गुरु दक्षिणा के समय स्वामी जी ने अपने गुरु जी की प्रेरणा से असत्य व अविद्या मिटाने व सत्य और विद्या का प्रचार करने का व्रत लिया और आगरा आकर प्रचार आरम्भ कर दिया था। स्वामी जी ने विलुप्त वेदों को अत्यन्त पुरुषार्थ से प्राप्त कर उनका अध्ययन किया और वेदों के यथार्थ भावों के अनुरूप अपनी मान्यतायें स्थिर कीं। वह वेद को स्वतः व परम प्रमाण मानते थे और संसार के अन्य सभी ग्रन्थों के वेदानुकुल भाग को परतः प्रमाण स्वीकार करते थे। वेद विरुद्ध विचारों व मान्यताओं को वह असत्य, भ्रामक व त्याज्य स्वीकार करते थे। उनका मत था कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना सभी आर्यों वा मनुष्यों का परम धर्म है।

ईश्वरीय ज्ञान वेदों का विश्व में प्रचार करने के लिये स्वामी दयानन्द जी ने सन् 1875 वर्ष के चैत्र शुक्ल पंचमी अर्थात् 10 अप्रैल को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इसके बाद देश के अनेक स्थानों पर आर्यसमाज की स्थापना का क्रम चलता रहा। स्वामी जी ने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार व प्रचार के लिये पंचमहायज्ञ विधि सहित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने यजुर्वेद का सम्पूर्ण तथा ऋग्वेद के 10 मण्डलों में से 6 मण्डलों का पूर्ण और सातवें मण्डल का आंशिक संस्कृत व हिन्दी भाषाओं में पदच्छेद, अन्वय, संस्कृत व हिन्दी में पदार्थ एवं भावार्थ भी किया है। अन्य अनेक ग्रन्थ भी स्वामी जी ने लिखे हैं। इन सभी ग्रन्थों की वेदों व वैदिक धर्म के पुनरुद्धार, प्रचार व प्रसार सहित देश व समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका है। स्वामी जी ने वेद विरुद्ध मतों के आचार्यों से संवाद, वार्ता, शास्त्रार्थ आदि भी किये। उनका सबसे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ काशी में 16 नवम्बर, सन् 1869 को देश के तीस शीर्ष पण्डितों से हुआ था। सभी सनातनी पौराणिक विद्वान वेदों को ईश्वरीय ज्ञान और स्वतः प्रमाण स्वीकार करते हैं। शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर था परन्तु सभी पण्डितगण मिलकर भी वेदों से मूर्तिपूजा के पक्ष में कोई

प्रमाण नहीं दे सके थे। यहां तक की उनमें से अनेक पण्डितों को स्मृति में दिये गये धर्म व अधर्म के लक्षण भी ज्ञात नहीं थे।

स्वामी दयानन्द जी ने जिन दिनों वर्ष 1863–1883 में धर्म प्रचार किया, उन दिनों आजकल की तरह रेल व सड़क यातायात की सुविधाये नहीं थी। इस पर भी उन्होंने अविभाजित पंजाब, संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली, राजस्थान, संयुक्त पूर्वी व अविभाजित बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशों में प्रचार यात्रायें कीं। इन प्रदेशों के अनेक नगरों आदि में कुछ–कुछ दिन रहकर धर्म प्रचार किया। वहां के लोगों से वार्तालाप आदि किया और आर्यसमाज भी स्थापित किये। स्वामी जी अपने प्रवचनों में सत्य धर्म का मण्डन और असत्य मत व मान्यताओं का युक्ति व तर्क पूर्वक खण्डन करते थे। उनका उद्देश्य सत्य मान्यताओं को प्रतिष्ठित करना और असत्य मान्यताओं का लोगों से त्याग कराना था। इसका कारण यह है कि केवल सत्य ही मनुष्य जाति की उन्नति का कारण है और सत्य के विपरीत बातें मनुष्य को पतन के मार्ग पर ले जाती हैं। ऋषि स्वामी दयानन्द जी महाभारत के बाद सबसे बड़े समाज सुधारक हुए। उन्होंने त्रैत सिद्धान्त वा त्रैतवाद अर्थात् ईश्वर–जीव–प्रकृति की सत्ता का सिद्धान्त दिया। देश को आजाद कराने और स्वराज्य स्थापित करने का मूल मन्त्र भी उन्हीं की देन है। वह समूचे विश्व समुदाय को सत्य विद्याओं के आदि ईश्वरीय ज्ञान वेद धर्म का पालन करता हुआ देखना चाहते थे जिससे सब सुखी व परजन्म में मोक्ष के अधिकारी बन सकें। आर्यसमाज का उद्देश्य ईश्वर की वेदाज्ञा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् 'विश्व को सत्य व श्रेष्ठ विचारों वाला बनाने' का कार्य आज भी अपूर्ण है। वेदानुयायी आर्यों का मुख्य दायित्व ईश्वर की इस वेदाज्ञा को पूरा करना है। इसके लिये सभी लोगों तक सत्य व असत्य का स्वरूप पहुंचाना होगा। आर्यों को अपने इस कर्तव्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

ऋषि दयानन्द ने समाज सुधार का अविस्मणीय एवं महिमाशाली कार्य किया। उन्होंने समाज से जन्मना जातिवाद व अस्पर्शयता के कलंक को दूर करने का आह्वान किया। इन्होंने इस परम्परा को वेदविरुद्ध व समाज के लिए हानिकारक घोषित किया। स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार भी उन्हीं की देन है। स्वामी दयानन्द जी ने बाल विवाह, बेमेल विवाह आदि के स्थान पर पूर्ण युवावस्था में गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार विवाहों को उत्तम बताकर प्रोत्साहित किया। विधवा विवाह का समर्थन भी आर्य विचारधारा में निहित है। ईश्वर की पूजा व उपासना के स्थान पर मूर्तिपूजा को ऋषि दयानन्द ने वेद शास्त्र विरुद्ध, अनुपयोगी व लाभरहित बताया। वह अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, फलित ज्योतिष तथा भूत–प्रेत आदि के विचारों को भी अनुचित व अनावश्यक मानते थे। जिस युग में कोई सोच भी नहीं सकता था, उस समय ऋषि दयानन्द ने एक दलित भाई की सूखी रोटी खाकर सामाजिक समरसता का सन्देश दिया था और ब्राह्मणों द्वारा विरोध करने पर उन्हें कहा था कि परिश्रम से अर्जित धन से प्राप्त अन्न व उससे स्वच्छतापूर्वक बनाया गया भोजन सभी के लिये भक्ष्य होता है। ऋषि दयानन्द ने आर्यावर्त्त वा भारत का हर प्रकार से पूर्ण हित किया। उन्होंने धार्मिक अज्ञान व अन्धविश्वासों को दूर कर श्रेष्ठ व मजबूत समाज की नींव डाली थी और सच्चे ईश्वर की सच्ची पूजा को प्रवृत्त किया था। ईश्वर के साक्षात्कर्ता और वेदों के मर्मज्ञ अनूठे विद्वान देव दयानन्द को हम सादर नमन करते हैं।

सगोत्र विवाह निषिद्ध क्यों है?

—पं० जगदेवसिंह सिद्धांती

मनुष्य (वह पुरुष हो या स्त्री) में माता—पिता के रज—वीर्य के सम्बन्ध के कारण उसमें सन्तान रूप में शारीरिक रक्त आदि अंश अवश्य पहुँचते हैं। यह आयुर्वेद का वैज्ञानिक सिद्धान्त है। इस कारण समान रज—वीर्य वाले स्त्री—पुरुष वा माता—पिता के मिलने में सन्तान में कुछ विशेषता उत्पन्न नहीं होती और भाई—बहिन आदि अनेक सम्बन्ध नष्ट हो जाने से सदाचार का नाश और व्यभिचार की वृद्धि होती है। अतः समान गोत्र में विवाह कभी नहीं होना चाहिये।

माता आदि का गोत्र भी छोड़ा जाये तो और भी अच्छा है। माता की सपिण्डता=छः पीढ़ियां तो अवश्य छोड़ देनी वैधानिक हैं। पिता—पितामह—प्रपितामह आदि क्रम से हजारों पीढ़ियों तक पीछे जाना गोत्र कहलाता है। 6 पीढ़ी तक के बालक सपिण्ड कहलाते हैं अर्थात् 6 पीढ़ी ऊपर तक जितने पितृ गोत्र और मातृ गोत्र में पुरुष होंगे वे परस्पर सिपण्ड कहलाते हैं। सातवीं पीढ़ी पर पहुँच कर मातृवंश की सपिण्डता समाप्त हो जाती है क्योंकि वैज्ञानिक आधार पर माता के रक्त (रजः) का अंश बालक में 6 पीढ़ी तक अवश्य पहुँचता है। अतः इस मर्यादा का विवाह में कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये कि माता के वंश की 6 पीढ़ियों के भीतर की परिवार की कन्या से विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। पिता के वीर्य का साक्षात् सम्बन्ध 14 पीढ़ी तक अवश्य चलता है। उसको ''समानोदक'' कहते हैं। उदक नाम वीर्य का है। अतः पिता के वंश की 14 पीढ़ियाँ समानोदक कहलाती हैं। इन पीढ़ियों के भीतर के पुरुष—सम्बन्धी, बन्धु—बान्धव सनाभि, सकुल्य आदि नामों से पुकारे जाते हैं। इन सब को परिवार और कुटुम्ब कहा जाता है। अनेक परिवारों के समूह को वंश कहते हैं अर्थात् एक ही वंश में अनेक एक गोत्रीय परिवार रहते हैं। इसी प्रकार अनेक वंशों के समूह को गोत्र कहा जाता है। अर्थात् एक गोत्र में अनेक वंश होते हैं जिनका गोत्र समान होता है। जब तक गोत्र का नाम बना रहता है तब तक उन सब वंश वालों का एक ही गोत्र कहलाता है। किसी एक गोत्र में उत्पन्न हुई कन्या से उसी गोत्र के कुमार का विवाह नहीं होना चाहिये क्योंकि रक्त संबंध का अंश बना हुआ रहता है। इसी कारण वैदिक विवाह मर्यादा में सगोत्रता का युक्ति युक्त निषेध पाया जाता है। ऐसे अनेक गोत्रों के समूह के संघ को ''कुल'' कहा जाता है।

एक कुल में भिन्न—भिन्न गोत्रों का समावेश हो जाता है। विवाह सम्बन्ध में समान कुलोत्पन्न वर—वधू का विवाह हो सकता है क्योंकि वहां रक्त सम्बन्ध का नाम मात्र भी नहीं होता परन्तु एक ही गोत्र में विवाह सम्बन्ध त्याज्य है। इसी पवित्र नियम का पालन करती हुई आर्य जाति आज भी शुद्ध रूप में बनी हुई है। यह गोत्र विचार पाखंड और ढ़ोंग नहीं किन्तु पूर्ण वैज्ञानिक और वैदिक है। इस नियम का पालन करने से सन्तानें श्रेष्ठ, सदाचारी, कुलीन, विद्या विभूषित, बलवान, दृढ़ांग और नीरोग बने रहते हैं।

विवाह संस्कार के नियमों का पालन अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार के विवाह सम्बन्ध द्वारा ही गृहस्थाश्रम का पालन मर्यादा पूर्वक किया जा सकता है। इसी से मनुष्यों की आयु 100 वर्ष की सामान्य रूप से बनी रहती है। जिन देशों और जातियों में इस नियम का पालन नहीं होता वे शीघ्र पतनावस्था में पहुंच जाती हैं।

महान वैदिक धर्म प्रचारक रक्त–साक्षी पं. लेखराम आर्य मुसाफिर

–डॉ० विवेक आर्य

पं. लेखराम आर्यमुसाफिर के नाम से आर्यसमाज का प्रत्येक अनुयायी परिचित है। 6 मार्च, सन् 1897 को उनका लाहौर में वैदिक धर्म की वेदी पर बलिदान हुआ था। उनके बलिदान का कारण था कि वह वैदिक धर्म के प्रचारक तथा व आर्य हिन्दुओं के रक्षक थे। यदि अविभाजित पंजाब सहित कहीं किसी वैदिक धर्म के अनुयायी का धर्मान्तरण होता था तो पं. लेखराम जी वहां पहुंच कर धर्मान्तरण करने वाले अपने भाईयों को समझाते थे और उन्हें अपने धर्म की विशेषताये बताकर धर्मान्तरण न करने की प्रेरणायें करते थे। आपने सहस्रों लोगों को धर्मान्तरित होने से बचाया। वैदिक धर्म के इतिहास में आप सदैव अमर रहेंगे। पं. लेखराम जी का जन्म पंजाब के झेलम जिले के ग्राम सैदपुर में सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपकी जन्म तिथि चैत्र महीने की सौर 8 तथा वर्ष विक्रमी 1915 है। आपके पिता का नाम महता तारासिंह था। बाल्यकाल में आपको केवल उर्दू व फारसी की शिक्षा प्राप्त हुई। आपकी यह शिक्षा आपके भावी जीवन में इस्लाम मत के ग्रन्थों का अध्ययन करने में काम आयी। अपने बाल्यकाल से आप कुशाग्र बुद्धि के बालक थे तथा उर्दू–फारसी में कविता लिखने की ओर आपका झुकाव था। आपके चाचा पंडित गंडाराम पुलिस विभाग में इंस्पेक्टर थे। उनके द्वारा आप पुलिस विभाग में सारजेन्ट के पद पर नियुक्त हुए। आप बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे और एकादशी का व्रत रखने के साथ गुरुमुखी भाषा में छपी गीता के श्लोकों का पाठ भी नियमित रूप से करते थे। आर्यसमाज के सम्पर्क में आने से पूर्व आप अद्वैतवाद अर्थात् जीव–ब्रह्म की एकता व समानता को मानते थे। आपमें वैराग्य का भाव तीव्र अवस्था में था। इन्हीं दिनों आपको लुधियाना के एक समाज सुधारक व धर्मप्रचारक पं. कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थों के अध्ययन का अवसर मिला। इससे आपको ऋषि दयानन्द और उनके समाज सुधार के कार्यों सहित वेद धर्म प्रचारार्थ आर्यसमाज की स्थापना का ज्ञान हुआ। आपने अजमेर से आर्यसमाज का साहित्य मुख्यतः सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ मंगाकर पढ़े। इससे आपके विचार बदल गये और आप आर्यसमाज के अनुयायी व सदस्य बन गये। पं. लेखराम जी ने संवत् 1936 विक्रमी के अन्तिम भाग में सीमा प्रान्त के पेशावर नगर, जो मुस्लिम बहुल था, वहां आर्यसमाज की स्थापना की थी। पंडित लेखराम जी को धर्म विषय में कुछ शंकायें थी। इसके निवारण के लिये आपने महर्षि दयानन्द से मिलने का निश्चय किया। आप पुलिस की सेवा से एक महीने का अवकाश लेकर 17 मई, 1880 को पेशावर से अजमेर पहुंचे जहां ऋषि दयानन्द सेठ फतहमल की वाटिका में ठहरे हुए थे। इस स्थान पर आपने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये तथा उनसे वार्तालाप वा शंका समाधान किया। यह आपकी ऋषि दयानन्द से पहली व अन्तिम भेंट थी।

स्वामी जी के दर्शन से आपके यात्रा के सभी कष्ट विस्मृत हो गये। ऋषि दयानन्द जी के सत्य उपदेश से आपके सभी संशय भी दूर हो गये। आपने ऋषि दयानन्द से 10 प्रश्न किये और उनके उत्तर सुने। इन उत्तरों से आपका समाधान हो गया। बाद में आप अपने 7 प्रश्नों व उनके ऋषि द्वारा दिए उत्तरों को भूल गये। शेष प्रश्नों व उनके उत्तरों को स्वयं प्रस्तुत किया है। आपकी पहली शंका थी कि ब्रह्म व आकाश दोनों सर्वव्यापक हैं। यह दोनों व्यापक पदार्थ

एक ही स्थान पर एक साथ कैसे रह सकते हैं? महर्षि दयानन्द ने एक पत्थर उठाया और कहा कि जिस प्रकार इसमें अग्नि, मिट्टी और परमात्मा तीनों व्यापक हैं उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में परमात्मा और आकाश भी व्यापक हैं। ऋषि ने कहा कि सूक्ष्म वस्तु में उससे भी सूक्ष्मतर वस्तु विद्यमान रहती है। ब्रह्म सूक्ष्मतर होने से सभी पदार्थों में सर्वव्यापक है। पं. लेखराम जी ने लिखा है कि ऋषि से यह समाधान सुनकर मेरी तृप्ति हो गई। ऋषि द्वारा अन्य प्रश्नों को पूछने की अनुमति देने पर उन्होंने 10 प्रश्न पूछे थे। उनमें से तीन प्रश्न व उनके समाधान उन्हें याद रहे, शेष 7 प्रश्न व उनके समाधान उन्हें विस्मृत हो गये थे। ऋषि से किये 3 प्रश्न व उनके उत्तर हैं, प्रश्न–जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये। उत्तर–यजुर्वेद का सारा चालीसवां अध्याय जीव और ब्रह्म का भेद बतलाता है। प्रश्न–अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं? उत्तर–अवश्य शुद्ध करना चाहिए। प्रश्न–विद्युत क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है? उत्तर–विद्युत सब स्थानों में है और घर्षण वा रगड़ से पैदा होती है। बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

अजमेर से लौटकर पं. लेखराम जी ने ''धर्मोपदेश'' नाम के एक उर्दू मासिक पत्र का सम्पादन व प्रकाशन किया। इसके माध्यम से उन्होंने वैदिक धर्म के सत्यस्वरूप व उसकी महत्ता का पठित लोगों में प्रचार किया। इसके साथ ही आप मौखिक व्याख्यान भी दिया करते थे। इसी बीच पंडित लेखराम जी को किसी अन्य थाने में स्थानान्तरित कर दिया गया। इसके पीछे उनके अधिकारियों की उन्हें परेशान करने की मन्शा भी थी। पं. लेखराम जी ने इस समस्या से स्वयं को मुक्त करने के लिये 24 जुलाई सन् 1884 को पुलिस विभाग की सेवा से त्याग पत्र दे दिया। इससे उन्हें आर्यसमाज के काम में उपस्थित होने वाली सभी बाधाओ से मुक्ति मिल गई और वह पूरा समय वैदिक धर्म के लिखित व मौखिक प्रचार में व्यतीत करने लगे। इस बीच उन्होंने मुस्लिम लेखकों के वैदिक धर्म पर आक्षेपों का उत्तर लिखना भी आरम्भ किया। वह धर्म प्रचारार्थ व ऋषि जीवन की घटनाओं के संग्रह के लिये अनेक स्थानों पर जाने लगे जिससे उनका नाम 'आर्यपथिक वा आर्यमुसाफिर' पड़ गया।

अहमदिया सम्प्रदाय के मुसलमानों के प्रवर्तक कादियां के मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी ने एक पुस्तक 'बुराहीन–ए–अहमदिया' लिखी जिसमें आर्यसमाज पर कटु आक्षेप किये गये थे। पंडित लेखराम जी ने इस पुस्तक का उत्तर 'तकजीव बुराहीन–ए–अहमदिया' नामक ग्रन्थ लिख कर दिया जो अकाट्य तर्कों से पुष्ट था। मिरजा ने दूसरी आक्षेपात्मक पुस्तक 'सुर्म–ए–चश्म आरिया' लिखी जिसका उत्तर पंडित जी ने 'नुस्ख–ए–खब्त अहमदिया' लिखकर दिया। मिरजा ने यह घोषणा भी की थी कि उसके पास ईश्वर के दूत सन्देश लाते हैं। वह अलौकिक चमत्कार दिखला सकता है। वह अपने ईश्वर से प्रार्थना कर एक वर्ष के भीतर किसी भी मनुष्य को मरवा सकता है। पं. लेखराम जी ने मिरजा की इन सब बातों का कादियां जाकर खण्डन किया व उसे निरुत्तर कर दिया। इस विवाद के बढ़ने से कुछ समय बाद पं. लेखराम जी की हत्या हुई और वह धर्म की वेदी पर बलिदान हो गये।

पंडित जी धर्म रक्षा के कार्य को करने के लिए हर क्षण तत्पर रहते थे। कहीं धर्मान्तरण व शास्त्रार्थ की आवश्यकता हो तो पं. लेखराम जी उत्साहपूर्वक वहां पहुंचते थे और अपनी सारी शक्ति लगा देते थे। पं. लेखराम जी की विद्वता व वाक्पटुता का लोहा उनके सभी विरोधी मानते थे। वह अपनी युक्तियों से बड़े–बड़े मौलवियों तथा पादरियों को निरुत्तर कर देते थे। पादरियों का व्यवहार उनके प्रति बहुत अधिक कटु नहीं

होता था। मुस्लिम विद्वान अपनी कट्टरता और तात्कालीन उत्तेजना का प्रदर्शन करते हुए मोहम्मदी तलवार की धमकियां देते थे। ऐसे आक्रमणों से पंडित जी कभी नहीं घबराये। उन्हें दी जाने वाली धमकियां का उत्तर वह यह कह कर दिया करते थे कि संसार में धर्म शहीदों के रुधिर से ही फूले फले हैं और मैं अपनी जान हथेली पर लिये फिरता हूं। पंडित जी ने बहुत से सनातनधर्मी सम्भ्रान्त व समृद्ध कुलों के युवकों को धर्मभ्रष्ट होने से बचाया था। मुजफफरनगर जिले के जाट रईस चौ. घासीराम और सिन्ध के रईस दीवान सूरज मल व उनके दो पुत्रों को भी उन्होंने धर्म भ्रष्ट होने से बचाया।

आर्यपथिक पंडित लेखराम जी एक निःस्पृह, साधु, त्यागी और सन्तोषी प्रवृत्ति के ब्राह्मण थे। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब से वह मात्र 25 रुपये लेकर रात दिन वैदिक धर्म की सेवा में व्यस्त रहते थे। बाद में उनका मासिक वेतन रात दिन उनके पुरुषार्थ को देखकर बिना उनके कहे 25 से बढ़ाकर 35 रुपये कर दिया गया था। उनका गृहस्थ जीवन सभी उपदेशकों व ब्राह्मण वर्णस्थ बन्धुओं के लिए अनुकरणीय था व है। पंडित जी शास्त्र पर्णित रुद्रसंज्ञक ब्रह्मचारी की अवस्था को प्राप्त करके 36 वर्ष की आयु में विक्रमी संवत् 1950 के ज्येष्ठ महीने में मरी पर्वत के 'भन्न ग्राम' की निवासी कुमारी लक्ष्मी देवी जी के साथ विवाह किया था। विवाह के बाद आपने अपनी पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। ग्रीष्म काल विक्रमी संवत् 1952 में उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नामकरण संस्कार वैदिक रीति से हुआ और बालक का नाम 'सुखदेव' रखा गया। पंडित जी वैदिक धर्म प्रचार में इतने व्यस्त हो जाते थे कि उन्हें अपनी पत्नी व पुत्र का ध्यान नहीं रहता था। वह चाहते थे कि उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी उपदेशिका बनकर उनके साथ धर्मप्रचार करें। इसलिये वह अपनी पत्नी व पुत्र को भी धर्म प्रचारार्थ साथ में ले जाने लगे। उनका पुत्र बहुत छोटा था। वह यात्रा के कष्टो को सहन नहीं कर सका और रुग्ण होकर डेढ़ वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गया। पंडित जी ने धैर्य से इस पुत्र वियोग के दुःख को सहन किया और वैदिक धर्म का प्रचार निरन्तर करते रहे।

महर्षि दयानन्द का 30 अक्टूबर सन् 1883 को अजमेर में बलिदान हो गया था। उनका सर्वांगपूर्ण जीवन चरित लिखे जाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। यह दायित्व आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने पंडित लेखराम जी को दिया। पंडित जी ने उन सभी स्थानों पर जाकर जहां–जहां ऋषि दयानन्द जी गये थे, उनके जीवन की घटनाओं का अन्वेषण किया और जिन पुरुषों का ऋषि से वार्तालाप तथा उपदेशों आदि में साक्षात्कार हुआ था, उनसे मिलकर उनके बताये वर्णनों को उन्हीं के शब्दों में लिखवा कर संग्रह किया। पं. लेखराम जी ने ऋषि जीवन ग्रन्थ की पूरी सामग्री एकत्र कर ली और जीवन चरित का लेखन आरम्भ किया। इससे पूर्व की वह पूरा जीवन चरित लिख पाते एक आततायी मुस्लिम युवक ने उनकी हत्या कर दी। ऋषि की मृत्यु तक का वृतान्त वह पूरा लिख चुके थे। पं. लेखराम जी द्वारा संग्रहित सामग्री व उनकी लेखनी से लिखा गया यह ऋषि जीवन चरित्र आर्यसमाज में ऋषि दयानन्द का सर्वोत्तम जीवन चरित है। ऋषि के छोटे बड़े एक दर्जन से अधिक जीवन चरित्र उपलब्ध हैं परन्तु अनेक कारणों से इस ग्रन्थ का महत्व सर्वाधिक है। आर्य विद्वान पं. भवानी प्रसाद जी ने लिखा है ''पण्डित लेखराम जी संगृहीत महर्षि दयानन्द की जीवनी में साक्षियों के शब्द– प्रतिशब्द–मौलिक और लिखित वर्णन ऐतिहासक दृष्टि से बड़े बहुमूल्य हैं। उन से ऐतिहासिक अन्वेशक को ऊहापोहपूर्वक पक्षपात रहित सत्य पर पहुंचने में बड़ी सहायता मिलती है।'' पंडित भवानी प्रसाद ने पं. लेखराम जी के विषय में यह भी महत्वपूर्ण जानकारी दी है 'मोहम्मदी लोग पण्डित लेखराम

से पहले ही से द्वेष रखते थे। उन्होंने उन पर दिल दुखाने और अश्लील लिखने के कई अभियोग मिरजापुर, प्रयाग, लाहौर, मेरठ, दिल्ली, बम्बई की फौजदारी अदालतों में दायर किये थे, किन्तु न्यायाधीशों ने पण्डित जी के लेखों में कोई बात भी आक्षेपयोग्य न पाकर उन की तलबी किये बिना ही उन सब अभियोगों को खारिज कर दिया। इससे मुसलमान (पंडित लेखराम जी से) और भी अधिक चिढ़ गये और धर्मवीर पर उन के रोष की सीमा न रही। उनकी ओर से पण्डित जी को वध की धमकियां आए दिन मिलने लगीं किन्तु पण्डित लेखराम भय का नाम ही न जाते थे। .... आर्यपुरुषों के सावधान करते रहने पर भी उन्होंने कभी अपनी रक्षा का प्रयत्न नहीं किया।'

पंडित जी के बलिदान की घटना का विवरण भी हम पं. भवानी प्रसाद जी के शब्दों में प्रस्तुत करना चाहते हैं। वह लिखते हैं 'अन्त को फरवरी सन् 1897 के मध्यभाग में एक काला, गठीले बदन का, नाटा मुसलमान युवक उन के पास आया और उन से अपने आप को हिन्दू से मुसलमान बना हुआ बतलाकर उस ने अपने शुद्ध किये जाने की प्रार्थना की। धर्मवीर तो पतितों के उद्धार और शुद्धि के लिए प्रत्येक क्षण कटिबद्ध रहते थे। उन्होंने उस को प्रेमपूर्वक अपने पास बिठलाया और धर्मोपदश देना प्रारम्भ किया। इस मनुष्य की आंखों में भयंकरता बरसती थी। कई पुरुषों ने उन को उस से सुरक्षित रहने के लिए भी चेतावनी दी थी किन्तु उन्होंने उस पर कुछ भी कान न दिया और उस को धर्मजिज्ञासु कह कर अपने हितैषियों की बात टालते रहे। एक दिन सायंकाल के समय उसी दुष्ट मुसलमान युवक ने अंगड़ाई लेते हुए पण्डित जी के उदर में, जब कि वे महर्षि दयानन्द जी की जीवनी में उन की परमपद–प्राप्ति के वर्णन का अध्याय अभी–अभी लिख कर उठे थे, कटारी भौंक दी, जिस से उन की आंतों में आठ मारक घाव लगे और उन से आधी रात तक बराबर रुधिर का प्रवाह बहता रहा। डाक्टर पेरी, सिविल सर्जन (लाहौर) के घावों को, दो घण्टे तक सीते रहने पर भी पण्डित जी न बच सके और उन्होंने फाल्गुन सुदि 3, संवत् 1953 विक्रमी तदनुसार 6 मार्च 1897 ई. को रात्रि के 2 बजे अपने नश्वर शरीर को वैदिक धर्म पर बलिदान कर दिया। प्राण त्यागने से पूर्व तक उन की चेतना में तनिक भी अन्तर नहीं आया। वे बराबर ''ओ३म् विश्वानि देव सवितर्...'' इत्यादि और गुरु मन्त्र का पाठ करते रहे। उस समय उन को न घरवालों की चिन्ता थी, न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर था।'' पंण्डित जी ने प्राण त्यागने से पूर्व अपने सहधर्मी मित्रों को अन्तिम आदेश यह दिया ''आर्यसमाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए।''

पंडित जी ने प्राणपण से वैदिक धर्म और आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार किया और इसी के लिये अपने प्राणों की आहुति भी दी। पण्डित जी के अन्तिम संस्कार में लाहौर में तीस हजार लोगों ने अपने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें श्रद्धांजलि दी थी। पंडित लेखराम जी के गुण, कर्म व स्वभाव का वर्णन करते हुए पं. भवानी प्रसाद जी ने कहा है कि वह अत्यन्त त्यागी, सरल स्वभाव, प्रतिज्ञा पालन के पक्के, तेजस्वी, मन्युप्रवण, आर्य सिद्धान्त के अटल विश्वासी, अकुतोभय, वाक्पटु, सुलेखक और आदर्श धर्मप्रचारक थे। उनके रक्तबिन्दु पृथिवी पर व्यर्थ नहीं गिरे। उन्होंने सोमनाथ, वजीरचन्द, मथुरादास, तुलसीराम, सन्तराम, योगेन्द्रपाल, जगतसिंह आदि अनेक धर्माग्नि से प्रज्वलित हृदय वाले भावुक धर्मोपदेशक उत्पन्न किये थे और आशा है कि वे आगे भी ऐसे ही अदम्य उत्साह से परिपूर्ण प्रचारकों को जन्म देते रहेंगे। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हुए पं. लेखराम जी के बलिदान पर हम उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। ओ३म् शम्।

उपवास से स्वास्थ्य–लाभ

–वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी

भारतीय सनातन संस्कृति में व्रतोपवासका विशिष्ट स्थान है। यह हिन्दु–संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। मन्वादि धर्मशास्त्रों में मुख्य रुप से मन तथा शरीर की सर्वविध शुद्धिपूर्वक भगवत्प्राप्ति की योग्यता प्राप्त करने के लिए उपवास की उपयोगिता निर्दिष्ठ की गयी है और इसे सनातन धार्मिक जीवन का एक आवश्यक अंग बतलाया गया है। इसी दृष्टि से एकादशी आदि के उपवासों का विधान है। कृच्छ्, अतिकृच्छ्, चान्द्रायणादि व्रतों में तो उपवास–कर्म प्रायश्चितस्वरुप हो जाता है। वशिष्ठ धर्मशास्त्र में उपवास को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः।।

इसका भाव यह है कि उपवास में सभी प्रकार के तामसी एवं राजसी इन्द्रिय–भोगों से विरति तथा सत्कर्मपूर्वक भगवनजन, ध्यानादि कर्म निर्दिष्ठ रहते हैं। उपवासादि के अनुष्ठान से सभी प्रकार के पाप–तापों का उपशमन होता है और सत्कर्मरुप अनुष्ठान से सद्गुणों का संचय होता है। इस प्रकार उपवास एक पुण्य अनुष्ठान है।

उपवास के दिन व्रती को सात्त्विक एवं स्वल्प आहार–विहार का ही सेवन करना चाहिए। इससे न केवल शरीर स्वस्थ रहता हैः अपितु मन भी दुर्विचार से अलग होने लगता है। उपवास के द्वारा अनेक भीषणतम रोगों को शान्त करने के लिये प्रायः भोजन अदि का निषेध तथा पथ्यसेवन का विधान बताया गया है। इसलिए शरीर को स्वस्थ रखने तथा रोगों के शमन करने हेतु उपवास की महत्वपूर्ण भूमिका है। आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास पर विशेष बल दिया गया है। उपवास पाचनतंत्र को शक्ति प्रदान करता है। पाचन संस्थान की स्वस्थता ही आरोग्य की पहली शर्त है।

शरीर एक यन्त्र की तरह अनवरत कार्य करता रहता है। भोजन को पचाकर मलभाग बाहर फेंकना तथा सार–भाग से प्रत्येक अंग–प्रत्यंग का पोषण करना ही इसका प्रमुख कार्य है। उपवास करने से पाचनक्रिया में भाग लेने वाले अवयवों–आमाशय, आहार–नली, पित्ताशय, यकृत, तथा आँतों को विश्राम मिलता है। अतिभोजन से शरीर की ऊर्जा का बहुत सा भाग उसे पचाने में ही व्यय हो जाता है, अतः विषाक्त द्रव्यों का पूरी तरह से निराकरण नहीं हो पाता। यह अवस्था रोगों को उत्पन्न विष–द्रव्यों के निष्कासन में लगी रहती है, फलतः भूख नहीं लगती। अतः रोगनिवारक सभी उपायों में उपवास प्राकृतिक सरल एव श्रेष्ठ चिकित्सा है। पशु–पक्षी भी रोगग्रस्त होने पर उपवास करते देखे जाते हैं। सभी प्रणियों की प्राथमिक चिकित्सा उपवास ही है।

उपवास के तीन उद्देश्य हैं–शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ। उपवास से दमा, मोटापा, कब्ज, बावासीर, अपेंडिसाइटिस, संग्रहणी, गठिया तथा यकृत के रोगों में बहुत लाभ होता है। प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ महर्षि चरक के अनुसार उल्टी, अतिसार, अजीर्ण, बुखार, शरीर का भारीपन, जी मिचलाना, अफरा, अरुचि आदि

रोगों में उपवास परम औषध है। इससे शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति एवं यौवन की स्थिरता बनी रहती है। उपवास से शरीर तथा मस्तिष्क के अवयव तरोताजा हो जाते हैं। पेट अन्न से भरा होने पर रक्त प्रवाह उदर की तरफ अधिक होता है, जिससे मस्तिष्क को ऊर्जा कम मिलती है। व्रत से शरीर के अनावश्यक भार का क्षय तथा भूख की वृद्धि होती है। मानसिक दुर्बलता, अवसाद, चिन्ता आदि व्याधियों का उपवास से निराकरण होता है। इससे नवीनता, स्फूर्ति एवं आत्मोन्नति होती है। डॉ0 प्यूरिंगटन ने आरोग्य, जीवन का आन्नद, सौन्दर्य, स्वतन्त्रता शान्ति तथा शक्ति चाहने वालों को उपवास करने की सलाह दी है।

व्यक्ति की शारीरिक क्षमता तथा रोग के अनुसार एक दिन से इक्कीस दिन तक उपवास करने का विधान है। सिरदर्द, उदरविकार, जुकाम, गले की सूजन आदि रोगों में तीन–चार दिन के छोटे अपवास से लाभ हो जाता है। गठिया, लीवर के रोग एवं कैंसर आदि में लंबा उपवास किया जाता है। मांसाहारी को लंबा तथा शाकाहारी को छोटा उपवास अपेक्षित है। स्वस्थ व्यक्ति को जीवनशक्ति बढाने के एवं स्वास्थ्य की रक्षा–हेतु सप्ताह में एक दिन उपवास करना प्रर्याप्त है। उपवास से बहुत सा विषाक्त द्रव्य शरीर के मांस तन्तुओं से निकलकर रक्त में मिल जाता है, अतः विषका प्रभाव नष्ट करने और इसे शरीर से बाहर निकालने के लिये प्राकृतिक लवणों की आवश्यकता होती है जो फलाहार से प्राप्त होते हैं। अधिक दिन तक उपवास करने वालों को केला, सेब, टमाटर, खीर, गाजर, मूली, पालक, पत्तागोभी, शहद एवं छाछ का प्रयोग करना चाहिए। साप्ताहिक उपवास में केवल पानी या नींबू का पानी पीना पर्याप्त है। उपवास के प्रारम्भिक दिनों में पेट में वायु, अनिद्रा, मुँह का बेस्वाद होना, दुर्गन्धपूर्ण पसीना आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। धैर्यपूर्वक उपवास जारी रखने पर इनका स्वतः ही शमन हो जाता है।

उपवास–काल में बिस्तर पर न लेटकर, चिन्तामुक्त रहते हुए हल्का कार्य करना चाहिये। धूपस्नान, मिट्टीस्नान, प्राणायाम, मौनधारण, दूब पर भ्रमण और स्नान उपवास के लाभ को दुगुना कर देते हैं। बार–बार थोड़ा–थोड़ा पानी पीना भी लाभकारी है। अधिक ठंडा पेय, चाय, कॉफी तथा धुम्रपान का सेवन उपवास के लाभ को नष्ट कर देता है। भूखे पेट रहकर चांदनी का सेवन स्नायुतन्त्र को मजबूत बनाता है। लंबे उपवास को फलों का रस या शहद लेकर खोलना चाहिये। कुछ दिन तक भारी भोजन करने के बजाय फलाहार पर रहना उत्तम है।

भारतीय धार्मिक परम्परा में समय–समय पर विभिन्न व्रतों का समावेश उत्तम स्वास्थ्य को लक्ष्य में रखकर ही किया गया है। एकादशी के दिन मोटापा बढाने वाले चावल आदि स्टार्चयुक्त पदार्थों का सेवन निषेध तथा प्राणशक्ति बढ़ाने वाले फलाहार का निर्देश निश्चय ही प्रशंसनीय है।

भोजन के समान उपवास की इच्छा होने पर ही इसे करना चाहिये। उत्साह तथा प्रसन्नतापूर्वक किया गया उपवास अधिक लाभ करता है। भूख–प्यास सहन न करने वालों, चक्कर, न्यून रक्तचाप से ग्रस्त व्यक्तियों, बालक, गर्भिणी स्त्री तथा अतिवृद्धों को यथाशक्ति ही उपवास करना चाहिये।

बारीन्द्र कुमार घोष

—स्वामी यतीश्वरानन्द जी

'जुगांतर' क्रान्तिकारी दल के संस्थापक बारीन्द्र कुमार घोष एक क्रान्तिकारी, पत्रकार, लेखक तथा दार्शनिक थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी एवं दार्शनिक अरविन्द घोष इनके बड़े भाई थे। चिकित्सक कृष्णधन घोष तथा कवियित्री स्वर्णलता देवी के सबसे छोटे पुत्र बारीन का जन्म 05 जनवरी 1880 को लंदन के पास क्रायडन क्षेत्र में हुआ था। जब ये एक वर्ष के थे तो भारत आ गये थे। इस प्रकार इन्हें ब्रिटिश व भारतीय दोनों नागरिकताओं में से चुनने का अधिकार था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा देवघर में हुई तथा इन्होंने 1889 में देवघर हाईस्कूल से प्रवेश परीक्षा पास की। फिर इन्होंने पटना कॉलेज में दाखिला ले लिया। इसी बीच ये बडे भाई अरविन्द के राष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित हो गये तथा फिर पढ़ाई पूरी नही कर सके। उस समय अरविन्द घोष बड़ौदा राज्य में नौकरी करते थे। उन्होंने बारीन को बड़ौदा में सैन्य प्रशिक्षण दिलवाया। यहाँ बारीन ने राइफल चलाना, घुडसवारी, सैनिक संगठन आदि का अभ्यास किया। 1902 में अरविन्द घोष ने इन्हें जतीन्द्र नाथ बनर्जी (बाद में निर्लम्ब स्वामी) का अनुशीलन समिति के संगठन में हाथ बँटाने के लिये कलकत्ता भेजा। पर बारीन का काम करने का तरीका तथा सिद्धांत जतीन्द्र बनर्जी से भिन्न था। 1905 में बारीन ने बंकिम चन्द्र के 'आनंद मठ' से प्रभावित 'भवानी मन्दिर' पुस्तक लिखी। तब बंगाल में स्वदेशी संघर्ष व बंग–भंग आंदोलन शुरु हो गया था। बारीन का विश्वास था कि शांतिपूर्ण संघर्ष से कभी स्ववंत्रता नही मिलेगी। अतः इन्होंने 1906 में देवघर में तथा 1907 में मानिकतला में बम फैक्ट्री की स्थापना की तथा हथियार इकट्ठे करने शुरु किये। 1906 में ही इन्होंने 'जुगांतर' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकालनी शुरु की तथा 1902 की अनुशीलन समिति के प्रमुख क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर बाघा जतिन के सहयोग से 'जुगांतर' नामक गुप्त क्रान्तिकारी समिति की स्थापना की। बारीन का समूह एक केन्द्रीकृत समूह था जबकि बाघा जतिन का समूह विकेन्द्रीकृत समूह था जिसमें समाज सेवा के कार्य भी किये जाते थे। 1907 में बारीन घोष की 'वर्तमान रणनीति' नामक पुस्तक छपी। जिसमें इन्होंने शांतिपूर्ण जनांदोलनों को त्यागकर गुप्त क्रान्तिकारी कार्यों को करने का आह्वान किया। 30 अप्रैल 1908 को खुदीराम बोस व प्रफुल्ल चाकी द्वारा मुजफ्फरपुर में बम काण्ड के बाद पुलिस ने 2 मई 1908 को बारीन घोष को गिरफ्तार कर लिया व इनकी मानिकतला बम फैक्ट्री को खोज निकाला। अदालत में इनसे पूछा गया कि वे भारत के नागरिक के रुप में पेश होना चाहेंगे या ब्रिटेन के तो इन्होंने कहा कि मैं विशुद्ध भारतीय हूँ। अलीपुर बम केस में इन्हें फाँसी की सजा हुई जिसे बाद में आजीवन कारावास में बदल दिया गया। 1909 में इन्हें अण्डमान की कुप्रसिद्ध सेलुलर जेल भेज दिया गया जहाँ इन्होंने काफी यातनाएं सही।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद राजनैतिक कैदियों को मिली आम माफी के

अन्तर्गत इन्हें भी रिहा कर दिया गया। 1920 में इन्होंने पत्रकारिता शुरु की और फिर कलकत्ता में आश्रम बनाकर रहने लगे। 1923 में बारीन अपने भाई अरविन्द से मिलने पांडिचेरी पहुंचे तथा छह वर्ष वहाँ रहे। यद्यपि ये श्री अरविन्द से प्रभावित थे, इनके गुरु अनुकूलचन्द्र थे। 1929 में बारीन ने पुनः पत्रकारिता शुरु कर दी तथा 1933 में एक अंग्रजी साप्ताहिक 'द डॉन ऑफ इण्डिया' (भारत का उदय) निकालना शुरु किया। बाद में ये अंग्रेजी दैनिक 'द स्टेटसमैन' से भी जुडे रहे तथा 1950 में बांग्ला दैनिक 'बसुमति' के सम्पादक बन गये। 53 वर्ष की आयु में इन्होंने शैलजा दत्त से विवाह कर लिया था। इनकी प्रमुख रचनाओं में 'अग्नियुग' 1900 के दशक के क्रान्तिकारियों का इतिहास है। इसके अलावा इन्होंने 'द्वीपान्तरेर बंशी', 'पाथेर इंगित', 'आमार आत्मकथा', 'ऋषि राजनारायण', 'श्री अरविन्द घोष' तथा 'द टेल ऑफ माई इक्जाइल' नामक पुस्तकें लिखी। 18 अप्रैल 1959 को 79 वर्ष की आयु में इनका देहान्त हो गया।

कोष को सुरक्षित रख!
अन्यथा चाकरी करनी पड़ेगी!

—महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

मनुष्य की उस बालक के समान अवस्था है जिसे पिता अपनी दुकान पर बिठा कर कह गया है कि ''धन की तिजोरी अन्दर रखी है, उसे बिना देखरेख के छोड़ न जाना। जब बाहर जाओ तब दरवाजा बन्द करके, ताला लगा, चाबी अपने पास संभाल रखनी।'' बालक कुछ देर तक तो बैठा रहता है पर अकेला उकता जाता है। अपने साथियों को खेलता और सामने दिखलाई पड़ता देखकर उबल पड़ता है और तुरन्त दौड़ पड़ता है। चाबी तो पास रख लेता है—पर ताला लगााना भूल जाता है। डाकू मौका देखकर खजाना चुरा ले जाते हैं और बालक वापस आकर देखता है—''कुछ भी नहीं'' रोता है—पर अब क्या हो? पिता कहता है, ''अब दूसरों के द्वार नौकरी करो, भिक्षा मांगो''। ऐसे ही मनुष्य को परमात्मा—पिता ने अमूल्य कोष दिया है पर मनुष्य संसार की विषय—वासनाओं में दौड़ जाता है, पर अन्दर के कोष—मन को ताला नहीं लगाता। वह खुला हुआ है, काम क्रोधादि डाकू द्वार खुले देखकर लूट ले जाते हैं। अब द्वार—द्वार का दास बनता रोता है।

पुलिन बिहारी दास

—स्वामी यतीश्वरानन्द जी

पुलिन बिहारी दास का जन्म 24 जनवरी 1877 में शरीयतपुर बंगाल के लोनेसिंह गांव में हुआ था। उच्च—मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे पुलिन के पिता नबकुमार दास मदारीपुर के सब—डिविजनल कोर्ट में वकील थे। इनके एक चाचा डिप्टी मजिस्ट्रेट व दूसरे मुंसिफ थे। परिवार के पास अच्छी पैतृक जमीन—जायदाद थी तथा घर में पढ़ाई—लिखाई का माहौल था। पुलिन भी मेधावी छात्र थे। इन्होंने 1894 में फरीदपुर जिला स्कूल से प्रवेश परीक्षा पास की तथा ढाका कॉलेज में प्रवेश ले लिया। विद्यार्थी होते हुए ही ये अपने कॉलेज में प्रयोगशाला सहायक तथा डिमोंस्ट्रेटर बन गये थे। इन्होंने 1903 में तिकतुली में एक अखाड़ा खोला तथा युवाओं को कसरत व कुस्ती के लिये प्रेरित करने लगे। 1905 में स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ होने पर ये सभी सभाओं में जाने लगे तथा विदेशी कपड़ों की होली जलाने जैसा काम करने लगे। इनका क्षेत्र बंगाल के बँटने के बाद नये बने प्रान्त 'पूर्वी बंगाल व असम' में आता था। सितम्बर 1906 में बिपिनचन्द्र पाल तथा प्रमथनाथ मित्र ने नये राज्य का दौरा किया तथा व्याख्यान दिये। एक भाषण में प्रमथनाथ ने उन श्रोताओं से आगे आने को कहा जो देश के लिये प्राणों की आहुति देने के लिये तैयार थे। पुलिन दास आगे आये। इनकी राष्ट्रभक्ति की भावना को पहचानकर इन्हें ढाका अनुशीलन समिति को स्थापित करने का कार्य सौंपा गया ताकि नये प्रान्त में स्थानीय क्रान्तिकारी गतिविधियों को सुचारु रुप दिया जा सके। पुलिन बहुत अच्छे संगठनकर्ता साबित हुए। इन्होंने 80 युवा क्रान्तिकारियों के साथ इस संगठन की नींव डाली और शीघ्र ही पूरे प्रान्त में ढाका अनुशीलन समिति की 500 से अधिक शाखायें बन गई। फिर इन्होंने ढाका में स्वदेशी शिक्षा के लिये 'नेशनल स्कूल' की स्थापना की। यह स्कूल जल्दी ही क्रान्तिकारियों का प्रशिक्षण केन्द्र बन गया जहाँ उन्हें क्रमशः लाठी, लकड़ी की तलवार , भाला, पिस्तौल व रिवॉल्वर चलाना सिखाया जाता था।

1907 के अंत में पुलिन ने ढाका के कलेक्टर बासिल कोपल स्टोन एलेन की हत्या की योजना बनाई। 23 दिसम्बर 1907 को इंग्लैंड वापसी के समय एलेन को गोलुन्डो रेलवे स्टेशन पर गोली मार दी गई पर वह बच गया। इसके कुछ दिन बाद 400 से अधिक मुस्लिम दंगाइयों ने हिन्दू—विरोधी नारे लगाते हुए पुलिन दास के घर को घेर लिया। पुलिन ने अपने थोडे से साथियों के साथ इन हमलावरों का डटकर मुकाबला किया तथा इन्हें भगा दिया।

1908 के प्रारम्भ में इन्होंने क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिये पैसा जुटाने हेतु ढाका के नावाबगंज में बारा का जमींदार के यहाँ दिन—दहाडे डकैती डाली तथा प्राप्त धन से बहुत से हथियार खरीद लिये। 1908 में इन्हें साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया तथा मांटगुमरी जेल में डाल दिया गया। जेल से 1910 में इन्हें रिहा किया गया और ये तत्काल क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने लगे। इस समय तक ढाका अनुशीलन समिति कलकत्ता

की पुरानी अनुशीलन समिति से अलग काम करने लगी थी। प्रमथनाथ मित्र की मृत्यु के बाद दोनों संगठन अलग हो गये। जुलाई 1910 में पुलिन को 46 साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया तथा इन पर राजा के विरुद्ध जनता को भडकाने का आरोप लगाया गया। बाद में 44 अन्य क्रान्तिकारी भी गिरफ्तार किये गये। उस ढाका षड्यन्त्र केस की सुनवाई के बाद पुलिन को आजीवन निर्वासन व कारावास की सजा हुई तथा उन्हें अण्डमान की सेलुलर जेल भेज दिया गया। यहाँ इनकी बारीन्द्र कुमार घोष तथा वीर सावरकर से भेंट हुई। कालेपानी की सजा में काफी यातनाएं सहने के बाद 1918 में पुलिन दास को वहाँ से वापस भेज दिया गया तथा अगले एक वर्ष तक इन्होंने संगठित करने का प्रयास किया परन्तु पिछले एक दशक में ब्रिटिश पुलिस ने क्रान्तिकारी आंदोलन को इतनी बुरी तरह कुचला था कि इन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। फिर नागपुर व कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशनों में अधिकांश क्रान्तिकारी गाँधी जी के असहयोग आंदोलन के साथ हो गये। पर पुलिन दास ने सशस्त्र क्रान्ति का लक्ष्य नहीं छोडा तथा गाँधी जी के नतृत्व स्वीकार करने से साफ मना कर दिया। 1920 में इन्होंने भारत सेवा संघ नामक संगठन बनाया तथा 'हक कथा' एवं 'स्वराज' नामक पत्रिकाएं निकालकर क्रान्ति का संदेश फैलाने लगे। ये कांग्रेस की अहिंसा की नीतियों के नितान्त आलोचक थे। पर शीघ्र ही इनकी गुप्त संस्था में गंभीर मतभेद पैदा हो गये तथा इन्होंने संगठन से सम्बन्ध समाप्त कर लिये।

1922 में इन्होंने सक्रिय राजनिति से सन्यास ले लिया। 1928 में इन्होंने कलकत्ता के मछुआ बाजार में 'बंगीय व्यायाम समिति' नामक अखाडे की स्थापना की तथा पुनः युवाओं को शारीरिक शिक्षा देने लगे। 17 अगस्त 1949 को आजादी के दो वर्ष बाद कलकत्ता में इनका निधन हो गया। वर्तमान में कलकत्ता विश्वविद्यालय में इनके नाम पर 'पुलिन बिहारी दास स्मृतिपदक' दिया जाता है जो स्वतन्त्रता संग्राम में इनके योगदान को याद दिलाता है।

पहेली–त्याग से उन्नति

–महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

1. आम की शाखा तभी ऊँची होती है–जब वह अपने फल का त्याग करती है। त्याग करते ही तुरन्त ऊँची चढ़ जाती है।
2. जब तक फल का मोह है–नीचा मुख रहेगा।
3. फूल जड़ है–उसकी सुगन्धि जड़, रुप जड़ है फिर वे कैसे खींच रहे हैं? क्या नाक को? आंख को? वे भी तो जड़ हैं। वे तो खींच रही हैं आत्मा को। भला आत्मा तो निर्लेप है वह क्यों खिंचे? इसमें जो रहस्य है वह यह, कि सुगन्ध पुष्प की अपनी नहीं, रुप इसका अपना नहीं। अपितु उसमें चेतनाशक्ति की मति है। इसलिए आत्मा अपने प्रियतम प्यारे प्रभु की वास के लिये दौड़ता है–खिंचा जाता है।

पूर्व वचन

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविशेच्छत् समाः।
एवं त्वयि नाऽन्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। –यजुर्वेद 40। 2।।

–ईश्वरी प्रसाद प्रेम

परम पावनी कल्याणी वेदमाता द्वारा स्वयं परमेश प्रभु अपने अमृत पुत्र मानव को निर्देश करते हैं।

मानव! तू कर्म करता हुआ ही (कर्मयोगी बनकर ही) सौ वर्ष तक जीवे, ऐसी इच्छा कर। अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षण तक एक भी श्वास शेष रहने तक तुझे आलस्य और अकर्मण्यता की प्रतीक चारपाई में प्राण–त्याग नहीं करना किन्तु कर्तव्य, कर्म और पुरुषार्थ की द्योतक भूमि पर महा प्रयाण करना है।

प्यारे मानव ! याद रख, कर्मों का यह बन्धन भी (जिसके कारण तू आवागमन के चक्र में आया है) कर्म के द्वारा–आनसक्त या निष्काम कर्म के द्वारा ही कटेगा। बन्धन–मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग है ही नहीं।

पर बिना कामना या आसक्ति के तो कोई कर्म सम्भव ही नहीं है? तब निष्काम कर्म का क्या अर्थ? यही कि हमारा प्रत्येक कर्म ईश्वर की आज्ञा के पालन के रुप में हो। हम ऐसा कोई कार्य न करें जिसके लिये परमेश प्रभु ने अपनी अमर वाणी वेद में निषेध किया हो, हम वही कार्य करें जिसकी आज्ञा वेद में है–फिर भले ही जय हो या पराजय, लाभ हो या हानि, यश हो या अपयश। दूसरे शब्दों में हमारा प्रत्येक कर्म भगवान् की प्रजा की सेवा के रुप में हो। इसी का नाम ईश्वरर्पित बुद्धि से किया गया कर्म है। इसी का नाम लोक–संग्राहक कर्म है और इसी को यज्ञ कर्म कहते हैं। यज्ञ कर्म–लोक हित के लिए परोपकार वृत्ति या निस्वार्थ बुद्धि से किये गये कर्म, जनता जनार्दन की सेवार्थ राष्ट्र के अज्ञान के अज्ञान–नाश, अन्याय–नाश या आभाव–नाश के रुप में किये गये कर्म–ही जन्म–जन्मान्तर के कर्म–बन्धन को काट सकते हैं। यह कर्तव्यानुष्ठान ही सच्ची प्रभु–भक्ति है।

यह कर्म योग ही प्रभु–प्राप्ति का साधन है, अन्य कहीं। हमारे पूर्व–ऋषि, मुनि, महात्मा, सन्यासी, वानप्रस्थी, गृहस्थी और ब्रह्म–चारी तथा ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र सभी इस जन सेवा या राष्ट्र सेवा रुप कर्मयोग की साधना करते थे। ईश्वर भक्ति अकर्मण्यता या निठल्लेपन का पर्याय न था, तब। सन्यासी का अर्थ कर्तव्यत्याग नही, किन्तु राष्ट्र–हितार्थ अपने व्यक्तिगत हितों को अथवा अपने कर्तव्य क्षेत्र को और अधिक व्यापक करना था। महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र और महामुनि अगस्त्य एवं वाल्मीकि आदि इसके उदाहरण है। श्री राम, कृष्ण और महावीर हनुमान के अतिरिक्त माता सीता, सावित्री और देवी पद्मरागा भी इसी के अन्यतम उदाहरण हैं। मध्य युग में महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महात्मा कबीर, गुरु नानक, गुरु गोविन्दसिंह और वर्तमान में महर्षि दयानन्द, नेताजी सुभाष और श्री शास्त्री जी आदि ने इसी राह पर चलकर प्रभु का प्यार प्राप्त किया है। आयें हम भी अपने इन महापुरुषों को मन्दिर की मूर्ति न बन कर, कर्मयोग की राह पर चल इनकी सच्ची पूजा करें। महावीर हनुमान से हम कर्तव्य के प्रांगण में बढ़–बढ़ कर कौशल दिखाना सीखें।

वानर राष्ट्र की राजनीति में हनुमान जी का प्रवेश

हनुमान का तप–त्याग और उनकी अनुपम साधना रंग लाई। पद्मरागा की तपस्या प्रतिफलित हुई। अब तक 'युवा वानर दल' का निर्माण हो चुका था। महावीर हनुमान इसके नेता थे। 'सिर बांध कफनवा हो, चली वीर शहीदों की टोली' का मस्ताना राग अलापते हुए राष्ट्र की युवा शक्ति हनुमान जी के नेतृत्व में जमा हो रही थी। आततायी राक्षसों पर छुट पुट हमले कर उन्हें अपने राष्ट्र की पवित्र भूमि छोड़ने के लिये बाध्य करना तथा ऋषि आश्रमों की रक्षा–आरम्भ में यही उनका मुख्य कार्यक्रम था। शीघ्र ही यह दल पद्मरागा के माध्यम से स्वयं महाराज बाली के छोटे भाई सुग्रीव के प्रस्ताव पर उनके सैन्य के साथ जा मिला। अब महावीर हनुमान सुग्रीव के प्रधान मंत्री थे। सुग्रीव भी हनुमान जैसे बुद्धि, विद्या, शौर्य, साहस और पराक्रम के धनी मंत्री को पाकर कृतार्थ हो उठे तो महावीर के निकट भी किष्किन्धा की राजनीति में सीधा भाग ले सकने का यह स्वर्ण अवसर था।

बाली के पास अपार सैन्य शक्ति तो थी ही, वह स्वयं भी अपने समय का अद्वितीय तीर था। महावीर हनुमान के परामर्श के अनुसार सुग्रीव ने बाली के साथ सीधे युद्ध करना उपयुक्त न समझकर 'गुरिल्ला युद्ध' की नीति को ही हितकर समझा। वे कभी किसी पर्वत पर अपने अल्पकालिक युद्ध शिविर रचाते। अवसर देखकर आक्रमण करते। कभी जम जाते तो कभी भाग खड़े होते। युद्ध की इस नीति से बाली बडा परेशान हो चला था।

इन दिनों सुग्रीव, हनुमान और उनके सहयोगियों का युद्ध शिविर ऋष्यमूक पर्वत पर लगा था। एक सायं जब वे अपनी युद्ध योजनाओं में व्यस्त थे, अनायास एक देवी का करुण–क्रन्दन उनके कानों में टकराया। साथ ही एक वेगगामी वायुयान की ध्वनि भी। उन्होंने ऊपर की ओर देखा ही था कि उन्हें कुछ वस्त्र और आभूषण अपनी ओर आते दिख पड़े। तत्परता से उन्हें संग्रह कर रख लिया गया। हृदय विदारक आर्त्तनाद के बीच देवी द्वारा उच्चारित 'हा राम!' हा लक्ष्मण!' शब्द भी उन्हें स्पष्ट सुन पडे।

महावीर हनुमान इन शब्दों को सुनते ही चौंक कर उठ खडे हुए। पर तब तक वायुयान दूर निकल चुका था, उसका कोई प्रति–कार भी शक्य नहीं था। बुद्धि–सागर एवं राजनीति–विशारद हनुमान को यह समझते देर नहीं लगी कि हो न हो आकाश मार्ग से जाने वाली यह राम–पत्नी सीता है। राम के वन आगमन और उनकी ऋषि रक्षण–प्रतिज्ञा के विषय में वे गुरुदेव द्वारा विस्तार से सब कुछ जान चुके थे। अतः उनके लिये यह अनुमान करना अधिक कठिन न था कि श्री राम का राक्षस–विनाश कार्य आरम्भ हो चुका है और उसी संदर्भ में किसी राक्षस (बहुत सम्भव है स्वयं रावण द्वारा) यह सीता–हरण जैसा घोर कुकर्म किया गया है। सुग्रीव को एकान्त में उन्होंने इस सम्पूर्ण रहस्य का संकेत किया। वे अब इस बात के लिये यत्नशील थे कि किसी प्रकार श्री राम की उनसे भेंट हो। मानो उनकी आंखें श्री राम–लक्ष्मण को खोजने लगीं। महावीर

हनुमान के मस्तिष्क में विश्वास था कि गुरुदेव ने श्रीराम को उनके युवक संगठन और बाद के विषय में भी अवश्य बताया होगा। और यों श्री राम को भी हमारी खोज होगी।

अन्ततः वह दिन भी आ पहुँचा। प्रातः का समय था। सुग्रीव एवं महावीर हनुमान तथा अन्य वानर वृन्द मिलकर दैनिक यज्ञ करने को ही थे, कि सुग्रीव को दूर से ही शैल शिखर की ओर बढ़ती हुई दो तेजस्वी मानव मूर्तियां देख पडी। उनकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने वीर हनुमान को कहा–'महावीर! देखिये वे कौन हैं?' महावीर का हृदय तो हर्ष से नाच उठा। हर्ष–विभोर हो बोले–'ठीक वही, जिनकी हमें प्रतीक्षा है।' यद्यपि हनुमान को बाल्यावस्था की भेंट के समय के राम सर्वथा विस्मृत ही हो गये थे। फिर भी वे उनकी ओजस्वी आकृति, उनके धनुष–बाण और महर्षि अगस्त्य द्वारा निर्देशित अन्य विशेषताओं के प्रकाश में यह पूरी तरह जान सके कि ये दोनों प्रवीर राम–लक्ष्मण ही हैं।

'पर महावीर! राजनीति का ऐसे अवसर पर क्या निर्देश हैं? सोलहों आने यह विश्वास होने पर भी कि ये राम और लक्ष्मण ही हैं, क्या यहाँ आने से पूर्व परीक्षण उचित न होगा ? कहीं.......'

आपका आशय है, कहीं ये दुःख के मारे बाली से ही जा मिले हों और अब बाली के संकेतानुसार हम लोगों के सर्वनाश के लिये आ रहें हों ? पर महाराज! श्रीराम के साथ बहुत बचपन में कुछ दिन मै रहा था, उनकी प्रकृति का पुण्य प्रभाव अभी तक मेरे मानस पर है। फिर इनका राक्षस–नाश का व्रत तो सर्वविदित है। बाली से उनकी दुरभिसन्धि शक्य है ही नहीं। फिर भी मैं राजधर्म और आपके आदेश का पालन करुँगा।

सौभाग्य का पतन

–महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

मनुष्य का विकास और ह्रास

प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन घटता और बढता है।

आधिभौतिक शरीर ज्यों–ज्यों बढ़ता है, आयु त्यों–त्यों घटती है।

पदार्थ ज्यों–ज्यों बढ़ता है, आचार त्यों–त्यों घटता है।

सर्वप्रथम वस्तु अभिमान ज्यों–ज्यों बढ़ता नम्रता त्यों–त्यों घटती है। दूसरी वस्तु स्वार्थ ज्यों–ज्यों बढ़ता है, सहानुभुति त्यों–त्यों घटती है। तीसरी वस्तु आलस्य ज्यों–ज्यों बढ़ता है, ईश्वरभक्ति त्यों–त्यों घटती है।

चौथी वस्तु आराम–विलासिता ज्यों–ज्यों बढ़ती है, परिश्रम का अभ्यास त्यों–त्यों घटता है।

आर्य समाज

–आर्य रवीन्द्र कुमार

आर्यसमाज अर्थात् श्रेष्ठ संस्कारी, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुणयुक्त, न्यायकारी मनुष्यों की समूह–संगठन सभा है। आर्यसमाज का मुख्य कार्य प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करना है। (आर्यसमाज का छठा नियम)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने गुरु व आचार्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती को गुरु दक्षिणा में उनकी इच्छानुसार अपने सम्पूर्ण जीवन को राष्ट्र के उपकार, सत्य शास्त्रों का उद्धार, वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार व मानव–कल्याण हेतु समर्पित करने का संकल्प लिया था तथा उस संकल्प का जीवन पर्यन्त पालन किया। वे अपने गुरु आचार्य विरजानन्द सरस्वती की विवेचनायुक्त अमूल्य बात को जीवन भर नहीं भूले–

"मनुष्यकृतग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है और ऋषिकृत में नहीं, इस कसौटी को कभी मत छोड़ना।"

उनके अनेक अनुयायियों ने उनके भारत राष्ट्र के उपकार, मानव–जाति का हित–कल्याण, सुख–समृद्धि तथा उनकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति के लिये एक संस्था स्थापित करने का निश्चय किया तथा महर्षि जी की अनुमति लेकर मार्गशीर्ष संवत् 1931 (सन् 1874) में उन्हीं से उसका नामकरण करने का अनुरोध किया। महर्षि दयानन्द ने उनका नाम 'आर्य समाज' रखना उचित बताया। आर्यभक्तों ने 'अत्युत्तम' कहकर उनके वचन का अनुमोदन किया।

उसके पश्चात् सबने मिलकर सर्वसम्मति से राजमान्य राजेश्वर पानाचन्द्र आनन्द जी पारिख को नियमोपनियम निर्माण करने का अधिकार सौंपा। कुछ समय पश्चात् महर्षि दयानन्द स्वामी जी ने उनके द्वारा निर्माण किये गये नियमों का अनुमोदन किया। नियम निर्मित हो जाने पर विक्रम संवत् 1932, चैत्र शुक्ल, प्रतिपदा, बुधवार, तदनुसार 7 अप्रैल 1875 को सायंकाल साढ़े पांच बजे मुम्बई नगर के गिरगांव मोहल्ले में डाक्टर मणिकचन्द्र की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

आर्य समाज के प्रथम सभापति श्री गिरधारीलाल दयालदास कोठारी हुए और श्री कृष्णदास जी को मंत्री चुना गया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सबके कहने पर भी आर्यसमाज में कोई पद स्वीकार नहीं किया। उन्होंने आर्यसमाज में केवल साधारण सदस्य ही बनना स्वीकार किया। आरम्भ में आर्य समाज के अट्ठाइस नियम बनाये गये थे परन्तु लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना के समय दस नियम कर दिये गये।

आर्य समाज के उद्देश्य

आर्यसमाज संस्था का मुख्य उद्देश्य महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा वेदों पर आधारित मानव–कल्याण हेतु अपनाये गये आदर्शों को जन–जन तक पहुँचाना तथा वैदिक वाङ्मय का संरक्षण या संवर्धन करना है ताकि आने वाले युगों–युगों तक मानव उन पर चल कर सत्कर्म करते हुए सुख–समृद्धि का स्वामी बने।

मदारी का रीछ

—महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

डग—डग, डग—डग, डग—डग डुगडुगी बज रही थी। इधर—उधर जिसके कान में यह आवाज पडी, वह तीव्रता से दौडा। चलो मदारी आया है, तमाशा देखेंगे। थोडी ही देर में भीड़ इकट्ठी हो गई। बूढे, जवान, बच्चे —सभी इस भीड़ में दिखाई देते थे। मदारी के पास एक हट्टा—कट्टा, सुदृढ़ काला रीछ था, जिसके नथुनों में नकेल पडी थी। जब वह शक्तिशाली रीछ इधर—उधर देखता था, तब बच्चे डर के मारे सहम जाते थे। एक—दो बार उसने मुँह खोलकर जो आवाज निकाली तो कई छोटे—छोटे बच्चे भाग निकले, परन्तु तमाशा देखने के लिए पुनः इकट्ठे हो गये।

जनता का जमाव देखकर मदारी ने खेल आरम्भ किया। एक व्यक्ति ने कहा—"देखो, इतना बड़ा रीछ इस समय किस प्रकार विवश है। यदि यह जंगल में हो तो फिर किसकी शक्ति है कि उसके सामने खड़ा रहे, परन्तु देखो! जब मदारी इशारा करता है तो वह नाचना आरम्भ कर देता है।"

अब रीछ का नाच हो रहा था। मदारी अब उसे नाच नचवा लेता। अब उसने इसके सिर पर एक सोटी रख दी और कहा—लो बच्चा! अब नाचो। रीछ ने उसे पकड़कर अपना जंगली नाच आरम्भ कर दिया एक तमाशा देखनेवाले ने कहा—"क्या रीछ नाचा करते हैं ?" साथवाले ने कहा—"ये नाचते कहाँ हैं, परन्तु अब तो नकेल नचा रही है।"

रीछ अपनी बेढंगी चाल से नाच रहा था। भीड़ में से रह—रहकर ठहाकों की आवाजें आ रही थी। बच्चों के पेट में तो हँसते—हँसते बल पड़—पड़ जाते थे। जब मदारी—"चेना कि चैनम चेना" की आवाज निकालता तो रीछ और भी जोश से नाचने लगता। उस समय सभी खिलखिलाकर हँस पड़ते।

इसी हँसी—खुशी की सभा में, इस दिल्लगी के जमघटे में एक बनवासी भी था। वह भी हँसा। उसने भी ठहाके लगाये, परन्तु उसकी हँसी कुछ निराली थी। वह उस निराली हँसी को साथ लेकर भीड़ से दूर निकल गया और एक सुन्दर वृक्ष की छाया में बैठकर सोचने लगा—किसपर हँसू ?

क्या रीछ पर, अपने आप पर, या संसार पर।

रीछ जब स्वतन्त्रता से जंगल में फिरता है, उसके नथुनों में नकेल नहीं होती, उस समय उसे देखकर लोग क्यों नहीं हँसते, क्यों उसका मजाक नहीं उडाते, सहम क्यों जाते हैं ?

इन्हीं बातों को सोचते—सोचते वनवासी चिल्ला उठा— "आह ! आह !! क्या मैं भी मदारी का रीछ हूँ। क्या संसार के और कई लोग भी मदारी के रीछ नहीं हैं ?" मैं देखता हूँ कि एक मनुष्य जिसके नथुनों में धन की नकेल पड़ी हुई है और जिसे लक्ष्मी देवी खेंच रही है, वह मनुष्य उस धन के इशारे पर ही सब काम करता है।

जिधर धन ले–जाता है, उधर ही चला जाता है। चाहे वह अनाथों, बेसहारों की हत्या करने पर विवश कर दे या अत्याचार करने के लिए तैयार कर दे। चाहे अपने मस्तिष्क, शरीर और आत्मा का भी बलिदान कर ले। मैं देखता हूँ, वह नाचता है और रीछ की भाँति नाचता है।

मैं देखता हूँ एक व्यक्ति सुन्दर स्त्री के हाथ में पड़ा हुआ नाचता है इसके नथुनों में सौन्दर्य की नकेल पड़ी है। सुन्दर स्त्री जैसा नाच नचवाना चाहे, नचवाती है, जो चाहे उससे करवाती है।

मैं देखता हूँ कि एक मनुष्य है, उसको यश, कीर्ति, मान और सम्मान की नकेल पडी हुई है और इसी के इशारे पर वह नाचता है। इसी के वश में हुआ–हुआ न पाप देखता है, न पुण्य देखता है।

मैं देखता हूँ और प्रतिदिन देखता हूँ कि भोग–विलास के देव ने कई मनुष्यों को नकेल डाल रखी है और वे लोग भोग–विलास के मदारीदेव के इशारे पर नाच रहे हैं। इन्हें बिलखती हुई माता, दम तोड़ते हुए पिता की चिन्ता नहीं। इनकी बला से यदि बाप–दादा का मान–सम्मान और धन और नाम बर्बाद हो जाए। वे इस मदारी के इशारे पर नाचते हैं किसी की भी परवाह नहीं करते।

मैं और भी बहुत कुछ देखता हूँ। बहुत से मनुष्यों के नथुनों में झूठे और लुटेरे गुरुओं, साधुओं और आडम्बरी–सन्तों ने नकेलें डाल रखी हैं और वे इन्हीं के इशारे पर विचित्र धमाचौकड़ी मचाते हुए, नाचते हुए दिखाई देते हैं। संक्षेप में कौन–सा मनुष्य है, जिसके नथुने में किसी–न–किसी मदारी ने कोई–न–कोई नकेल नहीं डाल रखी।

बनवासी जब इस प्रकार बोलता चला गया तो उसकी आँखों ने टप–टप आँसू गिरा दिये, परन्तु होंठों पर मुस्कुराहट आ गई। वह एकदम बोल उठा कि मूर्ख लोग मदारी के रीछ का तमाशा देखते हैं, परन्तु स्वयं नहीं जानते कि वे भी किसी मदारी के रीछ बने हुए हैं। आह! मुझे तो संसार में मदारियों के रीछों का ही तमाशा दिखाई देता है। सभी नाच रहे हैं, हाँ, सभी संसार नाच रहा है। आहो! सूर्य, चाँद, सितारे और तारे भी नाच रहे हैं। इनके नथुनों में भी परमात्मा ने नकेल डाल रखी है, अर्थात् पृथिवी, आकाश, मनुष्य, पशु, पक्षी सब अपने–अपने नाच में व्यस्त हैं।

परन्तु तनिक देखो तो सही, मुझे किस प्रकार की नकेल डाली गई है और वह किस मदारी के हाथ में है। क्या धन–सम्पत्ति तो मुझे नहीं नचा रही ? क्या कोई कामिनी तो मुझे 'था थे थया' नहीं करा रही।

क्या कीर्ती, मान और यश तो मुझे नहीं नचा रहे। कहीं भोग–विलास तो मेरा तमाशा नहीं दिखला रहे ?

क्या कोई मेरे–जैसा मनुष्य ही तो मुझे नहीं नचा रहा। यही आज सोचो, सोचो, फिर सोचो कि मैं किस मदारी का रीछ हूँ और क्या यह उत्तम नहीं कि अपनी नकेल परमात्मा–जैसे मदारी के हाथ में दें और उसी के इशारे पर चलें।

चूहेदानी का चूहा

—महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आधी रात व्यतीत हो चुकी थी। घर में एक चूहेदानी रखी थी। दीपक धीमे प्रकाश के साथ टिमटिमा रहा था। चूहेदानी में रोटी के कुछ टुकड़े थे। एक—दो बेर थे। कुछ हरे पत्ते थे, कुछ और वस्तुएँ थीं। एक चूहा कोठड़ी के बिल से निकला। धीरे—धीर टहलता—टहलता, इधर—उधर झाँकता, बड़ी सावधानी के साथ चूहेदानी अथवा पिंजरे के पास आया। चूहे ने एक बार और सारे कमरे के अन्दर दृष्टि दौड़ाई। उसे कोई ऐसी हस्ती दिखाई न दी, जिससे उसे भय हो। रोटी की खुशबू, बेरों, पत्तों और सब्जी की सुगन्ध ने उसकी नाक में पहुँचकर एक मस्ती सी पैदा कर दी। चूहा—चूहेदानी के चारों ओर फिरा। तीलियों में से रोटी के टुकड़े और मोटे—मोटे बेर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

"कैसे अन्दर पहुँचूँ और इन्हें कैसे हड़प करुँ", इसी सोच—विचार में उसने पिंजरे को ध्यान से देखा और अन्ततः एक छिद्र देखकर उसमें घुस गया। घुसते ही उसने देखा कि उसके चारों ओर लोहे की सलाखों की दीवारें बन गई हैं, फिर भी वह निश्चिन्त होकर रोटी को कुतरता है। बेरों को खाता है, परन्तु एकदम उसके मन में एक भय उत्पन्न होता है। वह अब खाना भूल जाता है।

मैंने देखा और ध्यान से देखा कि वह बैचैन हो गया। अब वह उछलता है, कूदता है। लोहे के तारों से सिर टकराता है, परन्तु बाहर निकलने के लिए मार्ग नहीं मिलता। जिस मार्ग से वह प्रविष्ठ हुआ था, उस मार्ग के आगे काँटे रखे हुए दिखाई देते हैं। बाहर निकलने के लिए संघर्ष करते—करते चूहा बेदम— शक्तिरहित हो जाता है। फिर बेबस होकर इसी चिन्ता में अपने जीवन के क्षण पूरे करता है।

एक दयालू मनुष्य चूहे की मूर्खता और और विवशतापूर्ण दया के योग्य अवस्था को देखकर अवश्य कहता होगा कि यदि यह चूहा जानता होता कि जिस वस्तु को वह चाहता है, वह एक पिन्जरे में बन्द है और उसके अन्दर प्रविष्ठ होना मृत्यु के मुख में जाना है।

परन्तु क्या चूहे ने ही गलती की है ? क्या वही दया का पात्र है। शीघ्रता करने वाले कह देंगे यदि चूहा नहीं तो और कौन ? परन्तु घबराने की आवश्यकता नहीं, तनिक शान्ति से इस प्रश्न पर विचार कीजिए, सम्भव है आप ही दया के पात्र सिद्ध हो जाएँ।

बच्चा मूर्ख है। वह अपने साथी के साथ भ्रमण करने आता है। मार्ग में साथी सिगरेट सुलगाता है और बच्चे को भी कहता है—"लो एक दम लगा लो, बड़ा मजा आएगा। एक बार पीने से क्या होता है ?" बच्चा चूहे की भाँति उसके चुंगल में फँस जाता है। वह इधर —उधर देखता है कि कोई देख तो नहीं रहा और सावधान होकर झट दम लगा लेता है। अब प्रतिदिन इसे पीना आरम्भ कर देता है। पहले छुप—छुपकर पीता है, डरता—डरता पीता है, फिर खुलमखुल्ला डब्बियों—की—डब्बियाँ खाली करने लगता है। वह चाहता है कि इसे छोड़ दे। छोड़ने का प्रयत्न करता है। चूहे की भाँति

उछलता है, परन्तु पड़ी हुई बुरी लत छूटती नहीं।

क्या ऐसे कई लोग आपने नहीं देखे जो अत्यन्त दुःखी आवाज से यह कहते सुनाई देते हैं कि इसे छोड़ दें, परन्तु यह किसी प्रकार छूटता ही नहीं। यह मूर्ख बच्चा इस पिन्जरे के अन्दर फँसकर मनुष्य बनता है और मनुष्य बनकर मर जाता है।

इसी प्रकार संसार के दूसरे प्रलोभन हैं, जो मनुष्य को आरम्भ में बहुत अच्छे दिखाई देते हैं। उन्हें प्राप्त करने की धुन में वह उन लोहे की सलाखों को नहीं देखता, जिनमें वह कैद होनेवाला है। कई लोग हैं जो कहते हैं कि शराब कैसे छूटे? संसार के धन्धों से कैसे छुटकारा हो ? इनसे छुटकारा कैसे हो सकता है? अब इन सलाखों की दीवारों में कैद हुए–हुए सिर पटकते रहो। जब यह अवस्था है तो क्या चूहे ही दया के पात्र हैं, हम नहीं। क्या हम भी भाँति–भाँति के पिन्जरों में कैद नहीं हैं। अच्छा हो हम इस रहस्य को समझें, जिससे प्रत्येक प्रकार के पिन्जरे से बचे रहें।

दान्त की श्वेतता

–महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

1. परमात्मा ने समस्त मानवों के शरीरों के आकार तो भिन्न–भिन्न बनाए हैं–कोई काला, कोई गोरा, कोई गन्दमी, कोई श्यामल आदि पर दान्त सबके श्वेत बनाए हैं।
2. दान्तों की श्वेतता का उदाहरण दिया जाता है–'चिट्टे दन्दां दी प्रीत''
3. दान्त पर शब्दों की समझ निर्भर है। जिसके दान्त नहीं, उसका उच्चारण समझ में कम आ सकता है। जैसे दान्तों की दृढ़ता से आंखों की दर्शनशक्ति और आमाशय कार्य कुशल रहता है, पाचनशक्ति व्यवस्थित रहती है–ऐसे दान्तों की श्वेतता से प्रभु का आशय यही प्रतीत होता है कि मानव बोलने में कभी मैला, काला, श्यामल न हो। उसका बोल उच्चारण–शुद्ध, पवित्र, श्वेत, निर्मल हो, यथवत् सत्य हो।
4. जिस मनुष्य के दान्त मैले या काले हों वह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।
5. सब पशुओं के दांत भी श्वेत होते हैं परन्तु वह स्वभाव से बुरा नहीं बोलते।

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन

रायपुर रोड (नालापानी), देहरादून–248008, दूरभाष : 0135–2787001

आत्म–कल्याण का स्वर्णिम अवसर

योग–साधना, यजुर्वेद पारायण एवं गायत्री यज्ञ का विशेष आयोजन

तदनुसारेण 12 मार्च से 20 मार्च 2019 तक

यज्ञ के ब्रह्मा–स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी

वैदिक साधन आश्रम तपोवन द्वारा आयोजित योग प्रशिक्षण शिविर (प्रथम स्तर)

(02 अप्रैल सायंकाल से प्रातः 09 अप्रैल 2019 तक)

योग शिविर निर्देशक–आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य

1. यह शिविर आवासीय है। शिविर में महिलाओं व पुरुषों की निवास व्यवस्था पृथक–पृथक होती है।
2. सम्पूर्ण शिविर मे विधिवत् भाग लेने के इच्छुक सज्जन ही आवेदन हेतू सम्पर्क करें। शिविर समापन से पूर्व वापिस जाना सम्भव नही हो सकेगा तथा 02 अप्रैल सायंकाल 6:00 बजे के बाद प्रवेश नही दिया जायेगा। इस कष्ट हेतु हम पूर्व से ही क्षमा प्रार्थी हैं।
3. प्रथम स्तर के शिविरों में भाग लेने वाले साधक ही आगे गम्भीर साधना के शिविरों में भाग ले सकेंगे।
4. शिविर में अधिकाधिक 125 साधक साधिकाओं की ही व्यवस्था सम्भव है। अतः इच्छुक जन पूर्व ही अपना स्थान सुरक्षित करा लें। पुराने शिविरार्थी भी भाग ले सकते है।
5. स्थान आरक्षण व अन्य जानकारी हेतु इन महानुभावों से सम्पर्क करें :–1. श्री नन्द किशोर अरोड़ा जी, दिल्ली, (मो०नं०–09310444170) समय दिन में 10:30 बजे से सायं 4:00 बजे तक, एवं रात्री 8 बजे से 10 बजे तक, 2. श्री प्रेम जी – 9456790201 समय प्रातः 10:30 बजे से सायं 4:00 बजे तक, एवं रात्री 8 बजे से 9.30 बजे तक।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन द्वारा आयोजित ग्रीष्मोत्सव

(15 मई से 19 मई 2019 तक)

यज्ञ के ब्रह्मा स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज

इस अवसर पर देश के मूर्धन्य विद्वान एवं भजनोपदेशक तथा गुरुकुल की आचार्या एवं ब्रह्मचारिणी पधार रही हैं। 19 मई 2019 को स्वामी दीक्षानन्द स्मृति समारोह भी मनाया जायेगा जिसमें देश के उच्च कोटी के आर्य विद्वानों, समाजसेवकों और भजनोपदेशकों को सम्मानित किया जायेगा। आप अपने आर्य समाज एवं परिवार के सदस्यों के साथ सम्मिलित होकर उत्सव की शोभा बढ़ायें। आपके लिए आवास एवं भोजन की उचित व्यवस्था आश्रम द्वारा पूर्व की भांति की जायेगी।

निवेदक

दर्शन कुमार अग्निहोत्री	**ई. प्रेम प्रकाश शर्मा**	**सुधीर माटा**
अध्यक्ष–09710033799	सचिव–09412051586	कोषाध्यक्ष–9837036040

Delite KOM

freedom to work...

DELITE KOM LIMITED

All dimensions are subject to change without any prior notice because of continuous research & development. All designs shown here are proprietary; Any infringement is liable for prosecution.

Delite KOM

DELITE KOM LIMITED

Kukreja House, IInd Floor, 46, Rani Jhansi Road, New Delhi-110055

Ph. : 011-46287777, 23530288, 23530290, 23611811 **Fax :** 23620502 **Email :** delite@delitekom.com

ISO 9001 DNV CERTIFIED

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2018-2020

समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

With Best Compliments From

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स / गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फन्ट फोर्कस
- गैस स्प्रिंगस / विन्डो बैलेन्सर्स

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बस बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर / फोर व्हीलर उदयोगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉंट हैं – गुड़गॉंव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है।

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गॉंव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।
संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com